सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतान, धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानामकी दया, वंश-व्यालीसकी दया

अथ श्रीबोधसागरे

एकोनचत्वारिंशस्तरंगः

अथ जीवधर्म बोध

★

दोहा–कौन धर्म है जीवको, सब धर्मन सरदार ।
जाते पावै मुक्ति गति, उतरे भवनिधि पार ॥
धर्मरूप यक वृक्ष है, मूल गुरू विख्यात ।
ज्ञान फूल फल मुक्ति है, शुभ कर्म शाखापात ॥
ज्ञान जीवको धर्म है, भ्रम त्रास जो मेट ।

सत्य पंथ पावे परखि, तब तेहि सतगुरु भेंट ॥
जबलों नहिं सतगुरु मिले, तबलों ज्ञान न होय ।
ऋद्धि सिद्धि तपते लहै, मुक्ति न पावै कोय ॥

अथ जीवको सत्यस्वरूपी देह और ज्ञानको लोप होना और स्थूलदेह और संसारको भासना और नानाप्रकार की सृष्टिको फुरना और कर्मधर्मको विस्तार वर्णन ।

चौपाई

जीव धर्म बरनो अब सोई । सब भ्रम भासजाय जिहि खोई ॥
मोह रैन जग सोवन हारा । स्वप्नरूप यह जग विस्तारा ॥
नींद गई कछु दरसै नाहीं । सबही भर्म भास मिटि जाहीं ॥
छूटे सकल कालको फंदा । ज्ञान पाय जिव होय अनंदा ॥
जेते धर्म धर्म कोइ माहीं । जीव भर्म सबही ये आही ॥
सत्य असत्य सकल है माया । माया सब मिथ्या बतलाया ॥
मायाते सब काया जागी । तनमनधन उपाधि संगलागी ॥
जब अभाव कायाको होई । माया सबही जाय बिगोई ॥
प्रथहि सत्यरूप जिव रहेऊ । कच्ची देह बहुरि सो गहेऊ ॥
जिहि कारन सतरूप लोपाना । स्वसंवेदमें प्रथम बखाना ॥
अहंकार कर निरखि निकाई । ताते अपनो रूप गवाई ॥
अपने रूपसे जब सो भटका । अतिशय दुःखद्वन्द्वमें अटका ॥
काल स्वरूपी है हंकारा । ताते प्रकट काल बरियारा ॥
काल कराल सोई अन्याई । सकल जीवको धरिधरि खाई ॥
यही जीवको बंधन कीने । भवसागरमें गोता दीने ॥
जाको हिय हंकाराते जूटे । निश्चय शीश तासुको टूटे ॥
अहंकार कहु तीन प्रकारा । द्वै प्रकार कर अंगीकारा ॥

जीवन मुक्त केर गुन दोई। त्याग तीसरो कह श्रुति सोई॥
प्रथम दृश्य जेती जग माहीं। मोते इतर और कछु नाहीं॥
मैं अद्वैत परमातम सारा। जीवनमुक्त परम हंकारा॥
पुनि दुतिया हंकार बखानो। आपको जो अति सूक्षम जानो॥
सर्वा भाग कच तेहौं कीन्हा। दोउ हंकार केर यह चीन्हा॥
जीवनमुक्तको दोउ हंकारा। पुनि तीजा यहि भांति उचारा॥
देहको जो आपा करि माना। ऐसी निश्चय तुच्छ बखाना॥
जाने सत्य जो अपनी देहा। बन्धनको कारण है येहा॥
शुद्ध आतमते चित्तको फुरना। ताको नाम अविद्या धरना॥
दोय भांतिकी फुरना होई। यक संसार और कह जोई॥
ताको नाम अविद्या राखा। आतम औरफुर अविद्या भाषा॥
दोऊ स्पंद रूप उर मद्या। नाश अविद्या करे अविद्या॥
जो विकल्पको कारण गाई। चित्त शक्ति क्षेत्रज्ञ कहाई॥
नाम शरीर क्षेत्र सो जाना। तेहि अंतर बाहरको ज्ञाना॥
नाम तासु क्षेत्रज्ञ कहीजै। सो जब सहित वासना भीजै॥
आत्मते इतर रूप जो धारे। निश्चय कलना ताहि पुकारे॥
निश्चय कलना जब सो गहई। बुद्धि नाम ताहीको कहई॥
अहंभावते निश्चय जोई। पुनि संकल्प ताहिमें होई॥
ताही कलनाको मन कहिये। चित्तशक्ति मनभाव जो गहिये॥
घन विकल्प मनमाह जो बंधा। शब्द स्पर्श आदिक भे गंधा॥
ताते इंद्रियानी फुरि आई। हाथ पांव प्राण आदि बताई॥
इंद्रिन सहित देह तब भासे। चार खानकी थित कह तासे॥
अचलते दृश्य दिशा फुरि आवा। तासु नाम संकल्प कहावा॥
संकल्पहिते सकल पसारा। सबही स्थूल मूल हंकारा॥
अग्निस्वरूपी है हंकारा। ताते तमगुनको बिस्तारा॥

तमते त्रिगुन तत्त्वको होना । ताते जक्त बीजको बोना ॥
ब्रह्मा बुद्धि रूप तन धारा । बुद्धिते रचित सकल संसारा ॥
अग्निरूप है प्रकटा काला । ताते जक्तकेर जंजाला ॥

सत्यकबीर वचन

तेज रूप गुरु काल उपाया । ताते सकल सृष्टि दुःख पाया ॥

दोहा-मैं करता मैं भोगता, मेरो सकल जहान ।
मैंही जगमें पूज्य हो, सुर मुनि मनुष महान ॥

चौपाई

अहं ब्रह्मास्मी कह ब्रह्मा । ताते रचनाको आरंभा ॥
अहंते सकल सृष्टि यह ठाढी । कथा कहानी जगमें बाढी ॥
यही अहं अज्ञानको मूला । ताते जीव सहै सो शूला ॥
अहं बोलि यह जीव सिधारै । बहुरि नवीन कलेवर धारै ॥
आवा गौन अहंते होई । यक तन तजि दूसर गह सोई ॥
ज्यौं ज्यौं जीव तुच्छता गहई । त्यौं त्यौं अधिक अहंसो लहई ॥
ज्यौं ज्यौं श्रेष्ठ पदनको पावै । त्यौं त्यौं ताही दीनता आवै ॥
भृगमुनि विष्णुको मारचौ लाता । सोकरि क्षमा कह्यौ मृदुबाता ॥
देखो दारिद्री कंगाला । धनपाये तेहि गर्व विशाला ॥
गहे न अहंकार हरि प्यारे । जीवहि अहं तुच्छ करि डारे ॥
अहंकारके है षट अंगा । ताते जीव केरि मति भंगा ॥
जब मति भंग जीवकी होई । नाना विधिको तन गह सोई ॥
देह सदा वासना ते पूरी । सुखी होय करि ताको दूरी ॥
जबलों रहै वासना मनमें । तबलों बिचर विषयके बनमें ॥
जीव कहाव देह अभिमानी । ताको मुक्तिपात्र नहिं जानी ॥
निर्बासनिक होय निस्प्रेही । जक्त पूज्य है साधू येही ॥
जिनके हृदयमें अभिमाना । तिनको कबहु उगै न ज्ञाना ॥

जो कोई कह मैं बड़ा कुलीना । सबसे ताको जाय मलीना ॥
जो कोइ कह मैं हौं बड़ सुन्दर । महाकुरूप सो होय छछूंदर ॥
जो कोइ कह मैं उत्तम जाती । सो बैठे कुकुरनकी पाती ॥
जो कोइ कह मैं पंडित ज्ञानी । होय निरक्षर पुरुष प्रानी ॥
जो कोइ कह मैं बड़ गुनवन्ता । होय सोय विष्ठाको जन्ता ॥
जो कोइ कह मैं बड़ बलवाना । होय अबल सो कीटसमाना ॥
जाति पांति कुलके अभिमानी । भ्रमत फिरै चौरासी खानी ॥
अभिमानिनकी कहो कहानी । धर्म महम्मद यथा बखानी ॥
त्रिविध तकब्बुर निर्णय ठानी । प्रथमजो भये ऐसे अभिमानी ॥
जस नमरूद आदि फिर उन्ता । नृप मद आपको ईश्वर गुन्ता ॥
प्रथम तकब्बुर प्रभुके ऊपर । नबीपै बहुरि तकब्बुर दूसर ॥
तृतीय तकब्बुर जग लोगनपैं । मैं गड तुच्छ और सब जनहैं ॥
हौं बड़ श्रेष्ठ गुनन मलसही । औरनमें यह गुन कह बस ही ॥
प्रथम कहौं विद्या अभिमानी । दुतिये तपसीतपजिन ठानी ॥
विद्याके अभिमानी जोई । तिनके मत विचार अस होई ॥
हमही मनुष और सब पशु गन । जिनके हृदय न विद्याको धन ॥
विद्या धन सर्वोपर गाई । ताते हम ईश्वर लखि पाई ॥
जगमें हम सबके शिर ताजा । हमरे हाथ है काज अकाजा ॥
दुतिये तपसिन केर समाजा । बिना मान नहिं कोई ऋषिराजा ॥
सो ऐसो निजु मनहि विचारी । दरश हमार जक्त हितकारी ॥
आपको मुक्त युक्त लख औरा । और तुच्छ हम सब शिरमौरा ॥
ये दोनों पदको मद भारी । रूप गर्व धारत है नारी ॥
धनअभिमानी पुनि अस बोला । मैं चाहों औरहि लेव मोला ॥
बलमदकुलमदकुटुंबअरुचाकर । शिखशाखा बहु मानधरे नर ॥
अभिमानिनकी दशा बखाना । हशरगाह जो न्याय स्थाना ॥

चिउँटी रूप होय हंकारी । तिनहि लताडे सब नर नारी ॥
हशरगाह ते जब सो चाले । हबहब कूप नरकमें डाले ॥
हजरत सुलेमानकी बानी । वृथा सकल तप हो अभिमानी ॥
राई भरि जामें हंकारा । सो बिहिशतको नहिं पग धारा ॥
पुनि रसूल मकबूल बतावे । होय दीन बड़ि पदवी पावे ॥
ऐसो नर जगमें नहिं कोई । जाके शिर लगाम नहिं दोई ॥
गहे लगाम सो दोय फिरिशते । जगजिव तिनहि दीनहो दिस्ते ॥
तब दोउ प्रभुसे बिनय उचरना । हे प्रभु याको ऊँचा करना ॥
धरि लगाम तेहि ऊँचा करही । जगमें श्रेष्ठ नाम तब परही ॥
जब जिव ऊंचा शीश उठावे । दोऊ फिरशते बिनय सुनावे ॥
हे प्रभु याको कीजे नीचा । धरि लगाम नीचेको खींचा ॥
अभिमानिनके शिरमें पौना । ताकौ चित्त फलावे तौना ॥
सोई पौन हंकार कहावै । बुरी चाल सब ताते आवै ॥
पढ़ि विद्या जगको भरमावै । आप न शुभकरनी मनलावै ॥
विद्याके अनुसार न करनी । अन्तमें तिनकी यह गति बरनी ॥
नरकमाह प्रभु तिन्है पठै हैं । औरनते दशगुन दुःख पैहैं ॥
गरदन पीठ तासु टुटि जाई । नरकमाह अतिशय दुख पाई ॥
जिमि खर चक्की को भरमावै । तैसे यम ताहि नाच नचावै ॥

दोहा—अग्नि कतरनी करगहे, कतरे तिनको ओठ ।
नरकमाह बड़ दुख भरे, विद्या पढ़िभे खोट ॥

चौपाई

अभिमानिनकी कथा बखानी । ईश्वरको बैरी तेहि जानी ॥
सकल बड़ाई प्रभुको सोहै । और बड़ा जगमें कहु कोहै ॥
जिनके हृदयेमें हंकारा । तिनको कोई करे नहिं प्यारा ॥
नृप फिर ऊन महाअभिमानी । आपको जो ईश्वरकरि जानी ॥

अबिरहामके जो संताना । निजु गोला गोली करि जाना ॥
मूसामें प्रभु सो गुन खोला । ईश्वर बना तासुको गोला ॥
फिर ऊबर मूसा ह्वै जाई । मानमर्दके गर्द मिलाई ॥

सोरठा—एक गृही यक साधु, दोय पक्ष है जीवको ।
यक संग्रही उपाय, एक रसिक निजु पीवको ॥
निज निज धन सुखहेतु, दोनों उद्यमको करे ।
होय सजग चित्त चेतु, जेती बुद्धि विवेक जिहि ॥
कृपा जो करे करतार, पूर्ण होय मनकामना ।
यह धन वह भवपार, जैसो जाके आगमें ॥

दोहा-ग्रहीके धन अधिकात जब, तब तेहि कहे अमीर ।
अधिक अधिक धन बितलह्यौ,कह्यौ अमीर कबीर॥
जबहि अमीर कबीरमों, तामें किब्र समाय ।
यथा दर्व दिन दिन अधिक, तथा किब्र अधिकाय॥
किब्र अधिक अधिकान जब, तब लाग्यौ बलकान ।
बलकत बलकत अंत भो, आप किब्रिया जान ॥
आप किब्रिया जान जब, गह्यौ ज्ञान शब्दाद ।
भूपर मोहिसम नहिं रहा, हरि ऊपर कर वाद ॥
प्रथम अमीर कबीर भो, पुनि अकबर अल्लाह ।
सो कबीर अकबर सोई, कहे किब्रिया ताह ॥
अल्लह जब बनि बैठिऊ, पहुँची तिनकी मौत ।
दोजखमें दाखिल भये, सेन सहित भै फौज ॥
जगमें भये कबीर बहु, जो लागे गहि तीर ।
आप तरे जग तार जो, सोई साच कबीर ॥
जिन जिन धारचो किब्र उर, टूटचो सबको शीश ।
जासु किब्र टूटे नहीं, परम पुरुष जगदीश ॥

जाको किब्र अघट्ट रह, तीन काल युग चार ।
ताहीको सब ठट्ट है, हट्ट लगी पन सार ॥
जिन जिन शीश उठायऊ, टूटचो सबको किब्र ।
सत्यकबीरको किब्र जो, सदा एक रस तिब्र ॥
श्रीमुख सत्यकबीर कह, किब्र जाहिमें दीप ।
मोड़ा तेहि छोड़ो नहीं, तोड़ो ताको शीश ॥
किब्र सहित जब जोय नर, होय नहीं तब खैर ।
परे किब्र या संगमें, याहि ढंगते बैर ॥
वैर किब्रियासे भयौ, गयौ नरक जिव सोय ।
कुशल कौनि बिधि तासुकी, रिपु जाको हरि होय॥
जासु किब्रिया नाम है, किब्र ताहिको सोह ।
और किब्र जो कोइ गहे, ले कबीर सँगलोह ॥
धनवितकों यह अंत है, सत बिचारो जाहि ।
सो धन पर हंकारकर, अहं दुःखद सब आहि ॥
जैसे गृहीकी कथा, कहति निकर्कारकी आहि ।
जब फकीर गुनज्ञान गह, तब हकीर कह ताहि ॥
घर घर मांगत भीख जो, दरदर होत हकीर ।
कोई गालीदे मार कोई, तनक न तन मन पीर ॥
अथ हकीरको तुच्छ है, कुछ रह्यौ नहीं मान ।
अधिकते अधिक हकीर भो, तब साहिब पहिचान॥
तब साहिब पहिनेऊ, फना कियौ तब आप ।
गना आपके कुछ नहीं, तन मन धन लखि पाप ॥
अंत हकारत जब भयौ, तूही तू तब टेर ।
जहँ तहँ देखो तूहि तू, मैं नाहीं कछु हेर ॥
मैं नाहीं जब ही रह्यौ, कह्यौ तूहि तू सर्व ।

जल थल वायू व्योममें, तुही व्याप सब दर्ब ॥
तूही भू जब देखेऊ, रहा कतहुँ नहिं आप ।
आप आप में रमि गयौ, पुनि दुतियाकिन थाप ॥
दुतिया गयौ गवाय जब, सिंधुमें बूंद समान ।
गहे गरीबी संत जब, अंत दुःख तब जान ॥
जब हंकार अतिशय बना, धन्य फकीर हैं सोय ।
किब्र तकब्बुरके गहे, गयौ धनिक सब खोय ॥
यथा फकीर हकीर भो, गृही अमीर कबीर ।
दोहु गुन दोष बिचारके, जीव तरे भवतीर ॥

इति अहंशब्द

अथ कामवर्णन--चौपाई

अहंते तम तमते आकाशा । तमते त्रिगुणतत्त्व परकाशा ॥
गुण प्रकृतमय तत्त्व जो पांचो । जगके अस्तंभन ये सांचो ॥
प्रथम अकाश है पंच प्रकृतमय । काम अरुक्रोध लोभमोहमय ॥
प्रथम कामको यह गुन जानू । दहन ज्ञान बन कठिन कृशानू ॥
स्वसंवेदमें प्रथमहि कहेऊ । ज्ञान गोप जब जिवको भेऊ ॥
तब निज सम्मुख दृष्टि उठाई । झांई रूप नजरमें आई ॥
सो झांई नारी तन गहेऊ । ताके संग भोग जिव कियऊ ॥
पुरुष छाहते प्रकटी नारी । सो भ्रम रूप जक्त बिस्तारी ॥
जबलों नारि पुरुषकी चाहा । तबलों नहीं कर्म कुल दाहा ॥
अपनी छाहते करे लड़ाई । भ्रम कटि जूनिनमें भरमाई ॥
सोई कहो जक्तकी जननी । परम रूपके ज्ञानकी हननी ॥
वृद्ध जक्तकी कामते आहीं । बुद्धि विवेक तहां कुछ नाहीं ॥
कामविवश जिव हो जिहिबारा । ताके हृदय न रहो बिचारा ॥

ताको गुन यह प्रकट देखावो । आवा गौनको लेख लगावो ॥
प्रथमहि दृष्टि दौरि जब जोई । नारि देखि केहि यह हरषाई ॥
जब नर ताहि निकट नियराया । कुचनके ऊपर हाथ चलाया ॥
कुचनको जब निजु करते परसा । अधिक मोद मनमें तब सरसा ॥
कुच नहिं भोजन पात्र पयोधर । अधिक प्रीति मानुष ताते कर ॥
प्रथमहि भोजन पात्र टटोले । आवागौन राह पुनि खोले ॥
तिहि मारगमें जब जिव धसेऊ । पुत्र होय पुनि बाहर खसेऊ ॥
भर्ता ह्वै तिहि मारग पैठा । पुत्र होय पुनि बाहर पैठा ॥
भोजन पात्र टटोल जो पहिले । बालक ह्वै भाजन सोइ गहिले ॥
भोजन भाजन भार्या माता । पुरुष पुत्र एकै द्वै बाता ॥
भीतर बाहर पैठे निकलेरे । आवा गौन आपनो सकरे ॥
मनते मनमथ भयौ प्रचंडा । महाकाल सत सो बरिबंडा ॥
पांचबान सो निज कर लीने । सकल जीव अपने बस कीने ॥

दोहा-मोहन मारन बसकरन, उच्चाटन उनमाद ।
पांच बान ये काम गह, तिहु पुर परा विषाद ॥
भवसारगमें आयके, कोइ न भयौ समरत्थ ।
यक कंचन यक कुचनपर, को न पसारयौ हत्थ ॥

कुंडलिया

भवसागरमें आनिके, भै कबीर समरत्थ ।
कंचन कुचन दोहूनपै, सो न पसारयौ हत्थ ॥
सो न पसारयौ हत्थ, आप कमला चलि आई ।
चित चंचलावनहित, कीन सो विविध उपाई ॥
कीनेसि विविध उपाय, कबीरको मन किमिहाली ।
ह्वै निरास श्री तास, बहुरि बैकुंठहि चाली ॥

चौपाई

कोई ह्वै पती पयोधर पकरे । कोई बनि पुत्र ताहिते टकरे ॥
भरता पुत्र होय नहिं दोऊ । सत्य कबीरते और न कोऊ ॥
नारिके बसमें सब संसारी । रचना तिहु पुरमाह पसारी ॥
भवसागर भगसागर जानी । भवके करता भव रु भवानी ॥
तीनों पुरको ईश कहाया । जिन भगर्चारके राह बनाया ॥
भगके रुधिरते भगवा भेषा । देव निरंजन अकथ अलेषा ॥
उज्ज्वल भेष पुरुषको बाना । भगवा भेष निरंजन राना ॥
अंग पिंड भग माह समाना । सत्य कबीर बचन परमाना ॥
अंतर ज्योति शब्द यक नारी । हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी ॥
ताहि तियहि भग लिंग अनंता । तेउ न जाने आदिवो अंता ॥
लिंग रूप यक शंकर कीना । धरती खिला रसातल दीना ॥
भा बालक भग द्वारे आया । भग भोगनको पुरुष कहाया ॥
अबला सम कहुँ बली न कोई । तीन लोक ताकी बस होई ॥
अष्ट प्रकारके मैथुन अहई । ताते न्यारा कोइ न रहई ॥

दोहा—श्रौतो सुमिरन कीर्तनो, चितबन बात यकंत ।
दृढसंकल्पो रत्न पुनि, प्रापति अष्ट कहंत ॥

चौपाई

मिथुन बिकार जीव सब पागा । जरे तीन पुर तिय अनुरागा ॥
जेती जगमें कथा किहानी । नारिप्रताप सकल से जानी ॥
जबलों रहें देहको खेला । तबलों हो नारी सँग मेला ॥
नारि परे जो जाना चहई । ताकी देह तहां नहिं रहई ॥
भग भोगे अरु भक्त कहावै । फिर फिर भगभोगनको आवै ॥
जड़ चेतन दोउ नारि स्वरूपा । कनक कामिनी जिव भ्रमकूपा ॥
बिषकी बेल दोहूको जानी । लगे ताहिमें जिव अज्ञानी ॥

महामहाऋषि मुनि छलि मारा । यह मनोज पापी हत्यारा ॥
तप जप सकल भ्रष्ट करि दीने । ज्ञानी ध्यानी निज बस कीने ॥

छंद माधवी

सूखे पत्र अहार अरु पौन भपे । धृत धर्म परासरके सरके ।
दृग जोहनि मोहनि रूपमहा, मनमोहित नाहरके हरके ॥
विधि नारद चंद स्वछंद भये, हृदया बजरोधरके धरके ।
अस कौतुक भो जो मन दौन कियो, सब जी भवसागरके गरके ॥

चौपाई

साध सिद्ध चल बनमें भागी । जाय नारि तिनके सँग लागी ॥
मौनी होय बसै गिरकंदर । बसै नारि तिनके उर अंदर ॥
मैथुन अष्ट तबो नहिं जाई । ताते बिकल सकल ऋषिराई ॥
बाहरको बिकार जो त्यागे । पुनि अंतरको दुःख दौ दागे ॥
इन्द्री मर्दके गर्द मिलाई । तऊ साधुको काम सताई ॥
जतन अनेक करे ऋषिराई । विजय मार पर ताऊ न पाई ॥
जस नट मरकट खेल खिलावैं । तथा मनोजभव जीव नचावैं ॥
नारिके बसन आभूषन ओरा । साधु कबहू न निजु दृग जोरा ॥
नारि चित्र कागज मूरत गन । ताहि न सन्त लखै निजु नैनन ॥
निरखै ध्यान आव सो मूरत । चढ़ै काम पुनि ताहि विसूरत ॥
नारि पुरुष जिमि घरमें रसहीं । ताके निकट साधु नहिं बसहीं ॥
कामकलोल करे पशुखग जहँ । साधु न कबहुँ दृष्टि डारे तहँ ॥
मदन विकार अनेक बिधाना । सो सब त्यागे ज्ञान निधाना ॥
जब लों यह बिकार दिल दागे । तब लों ज्ञान किरिन नहिं जागे ॥
कामकरे जिहि औसर अंधा । करे जीव कछु उलटा धंधा ॥

छन्द-रतिनाथ भाथ जो हाथ गहि, निजु सुमनसरसंधानेऊ ॥
तजि नीति गह बिपरीत रह, नर धर्मबंधन भानेऊ ॥

चैतन्यभे जड़ रूप जड़, चित चेत निजु उर आनेऊ।
शृंगार साजन लाल कहुं, कुसु कानिको मन मानेऊ।

इति काम

अथ क्रोधवर्णन-चौपाई

द्वितीये क्रोध महा बलवंता। सोसमस्त शुभ गुनको हन्ता॥
जाको देखि बुद्धिवर कम्पत। रहै न निकट भाजिहो चंपत॥
महा काल यह क्रोध उचारा। यह खल प्रकट होय जेहिबारा॥
धर्मको लेश रंच नहिं रहई। यह अपराधी जप तप दहई॥
प्रलय करे सतगुनहि बिडारा। आप दाहि और न दुहि डारा॥
वर्षहजार जो मुनि तप कीने। पलमें क्रोध भ्रष्ट करि दीने॥
नरकवास मुनि बरहि पठाई। कतहुँ न रही ज्ञान गहिराई॥
तप जप कहां क्रोध जब होई। जिवको निश्चय नरक बिगोई॥
सकल धर्मकी धूल उडावै। क्रोधको अंधकार जब आवै॥
अहंकार क्रोधादि विकारा। तुच्छ जीवमें अधिक निहारा॥
कीडा एक रहे घासनमें। ऐसो क्रोध ताहिके मनमें॥
जो कोई ताको परसे जाई। महा-क्रोध ताके उर छाई॥
क्रोधितह्वै अस मनहि बिचारी। छूवन हार को डारो मारी॥
कूदे उछलै जो रन चलई। आपको अबल जानिके टलई॥

इति क्रोध

अथ लोभवर्णन-चौपाई

तृतिये लोभकी कथा बखानी। शुभ गति लहै न लोभी प्रानी॥
लोभी निशदिन माला फेरा। ताको पार होय नहिं बेरा॥
सूम है नरक केर अधिकारी। जपतप कियहु न जन्म सुधारी॥
लोभी जीव जेते जग माहीं। नरक हेत सबही सो आहीं॥
लोभ ते शुभ करनी नहिं भावै। सोई सब अघकर्म करावै॥

सो नरपर कलियुग को बासा । तेहि प्रिय कीने बुद्धि विनासा ॥
सोई दुष्ट सब करे अकाजा । प्रीछित धर्म-धुरंधर राजा ॥
ताहूको सो बुद्धि बिगारा । कञ्चनपरकलि आसन धारा ॥
धर्म महम्मद करे बखाना । सोरनको भागी शैताना ॥
गहि कर कञ्चनदृग न लगाये । चूमि ताहि पुनि कह गोहराये ॥
कञ्चनसे जो प्रीति लगाई । सो नहिं भगवत भक्ती पाई ॥
सो लोभी इबलीसको बन्दा । निश्चय परे ताहिके फन्दा ॥
पुनि ऐसो इबलीस पुकारा । साधु सूम है मित्र हमारा ॥
सूम साधु जो जप तप करई । लोभ समस्त कृपा संहरई ॥
तैसे पापी दाता जोई । परमशत्रु मेरो है सोई ॥
जो कछु पाप करे सो दाता । दान किये सो सकल निपाता ॥
सो शैतानके वश नहिं परई । दाता कोटि पाप जो करई ॥
दोय वृक्ष द्वै ठौरमें देखा । यक औदारता लोभ है एका ॥
दानवृक्ष वैकुण्ठमें बरनी । गड़ी तासु जड़ ताही धरनी ॥
साष तासु दुनियामें आई । नरहित हेत सो दियो झुकाई ॥
जो कोई पकरे साष सखावत । सो निश्चयबिहिशतको जावत ॥
साष सखावत पकरि जो रहई । अघ औगुन सब ताको दहई ॥
नवीन प्रसंशिके बचन सुनावे । सखी अवश्य मेरे ढिग आवै ॥
ऐसहि लोभवृक्षकी लड़ है । घोर नरकमें ताकी जड़ है ॥
साष तासु जगमाह झुकाई । जो कोइ गहै नरकमें जाई ॥
शुभ करनी सब तासु नशावै । सूमको दौजखमें पहुँचावै ॥
सब धर्मनको मत है एहा । लोभी करे नरकमें गेहा ॥

अथ मोहवर्णन-चौपाई

चौथे मोह महा दुःखदानी । भव भोगनकी यही निशानी ॥
ता पिता सुहृद परिवारा । सगे सहोदर सह सुत दारा ॥

प्रथमहि मातु पिताकी मोहा । अंधभो जिमि काई लग लोहा ॥
जिहि औसर घरनी घर आई । मातु पिताकी प्रीति भुलाई ॥
परम प्रीतमा नारी अहई । बाघिन यथा गरासन चहई ॥
मधुर मधुर बोलै मुसकाई । महा ठगिन जिव ज्ञान ठगाई ॥
हनै जबहि सो काम कटारी । सरबस छीन लेय सो नारी ॥
ताते प्रकट भये जो पूता । पूत नहीं आयो यमदूता ॥
मधुर बोल बोलै मन हरही । दिन दिन अधिक प्रीति पितु करही ॥
पुत्र कि मोहमें जन्म गँवाये । ताते कबहुं न छूटन पाये ॥
ताकी मोह भयो जिव अंधा । चला अंतको यमपुर बंधा ॥
पुत्रसे कहो कौन सुख पाया । शूल गड़े जड़ मूल नशाया ॥
जन्मतही युवती हरि लीनो । युवा भये तब धन वित छीनो ॥
मूयहुपर कपालको फोरा । मा यह सुत धौं वैरी मोरा ॥
शत्रुको सदा मित्र जग जाना । मूढ़ नहीं चेते बिन ज्ञाना ॥
मेरो मेरो कर अज्ञानी । ममतामें भूले सब प्रानी ॥
मोर तोर कहि जन्म गँवावै । भक्ति महातम हाथ न आवै ॥
बन्धु मित्र अरु संगे सखागन । सो समस्त हैं भक्तिके दुश्मन ॥
इन्हैं पेलिके हरि यश भनिये । प्रीति कबहुँ मति ठगनते ठनिये ॥

छन्द पद्धडी

दशदिश देख बहु दृष्टि पसार । कोई नहिं तेरो यहि संसार ॥
मातु पिता स्वारथ हितकार । सुतदारादि सकल परिवार ॥
कोई न तेरो उबारनहार । सब मिलि तोहि नरकमें डार ॥
ताते तजो सकलकी प्रीत । यह दुनिया मतलबको मीत ॥
जिहि औसर स्वारथ ना होय । तेरो संग करे नहिं कोय ॥
बुद्धि विचारि विलोक विलोय । यह जग जान महाठग होय ॥
ठगसे प्रीति किये धन खोय । लहे अमरफलको विष जोय ॥

क्यों नहिं चिन्तामनि चित चीत। यह दुनिया मतलबकी मीत ॥
जठर अग्निते तेहि जो बचाय। काहे ताको दियो भुलाय ॥
महा दुःख जब घेरे आय। संकटमें सो करे सहाय ॥
भजु तेहि जन्म सुफल ह्वै जाय। परमहंसकी पदवी पाय ॥
ताकी कृपा चलो यमजीत। यह दुनिया मतलबकी मीत ॥

इति मोह

अथ भयवर्णन चौपाई

पंचम भय बटमार बड़ेरा। जो गहि जीव नरकमें गेरा ॥
भयवश तपी न जपतपकरहीं। भयते कायर घरमें मरही ॥
भय करि शूरा करे न करनी। भय करि सती न अग्निमें जरनी॥
भय कीने शुभ कर्म न होई। भय करि शुभगति लहै न कोई॥
भयकरि विद्याबुद्धि की हानी। भय भ्रम करि भर्मै चहुँखानी॥
पांच वर्षका वय ध्रुव पाया। तप कारन सो वनहिं सिधाया॥
मिले ताहि नारद ऋषिराया। विविधि भांतिसे भय दिखलाया
कानन महाभयावन कहेऊ। ध्रुवके हृदय न भय कछु गहेऊ॥
बनमें जाय गूढ़ तप ठानी। रंच न सो मनमें भय मानी ॥
तपकरि हरिहि लियो प्रकटाई। धन्य धन्य ध्रुव धन्य कहाई॥
जिनको हृदया भयते पूरा। तिनमें कबहुँ न साहस जूरा॥

दोहा–पंचप्रकृति आकाशकी, कीने कछुक बखान।
एकते एक महाप्रबल, सकल नरककी खान ॥

इति भय

चौपाई

पंच प्रकृत आकाश बखानो। पंच बहुरि बायूको जानो ॥
पंच अग्नि जलकी है पांचो। धरती पंच प्रकृति उर जांचो ॥
यही जीवको बंधन करही। इनहींते देही थित धरही ॥

तेहि सर्वथा अभाव जो कीजै । तब कैसे निज देह धरीजै ॥
पै अभाव कीजे गुरु द्वारे । तब जिव अपनो काज सँवारे ॥
पुत्र अकाशको बायू होऊ । पिता समान शून्य है सोऊ ॥
बायू बेटा अग्नि बखानी । सो तद्रूप तातके जानी ॥
तासुत जल जलते यह धरनी । ये सब सून्न एक सम उरनी ॥
शून्य अकाश शून्य तिहु गुन है। तम अरु अहंकार सब सुन है ॥
पुत्र पिता परपिता सहीते । सर्व सुन कहु सार न चीते ॥
शून्नको रचित देह यह अहई । शून्न सर्वथा ताको कहई ॥
शून्नकि कृपा सूत्र सब जानो । शून्न सर्वसंसारहि मानो ॥
तन मन धन सब शून्य बताओ। नाम रूप गुन शून्य कहाओ॥
सो तन मन धन गुरुको दीना । नाम तासु बदले गहि लीना ॥
शून्न जो दीना शून्नहि लीना । कहो कहा कारज निज कीना॥
शून्यहि दीन जो सून्नहि पाया । तेहि ब्योहार हाथ क्या आया॥
है परंतु कारण तह एका । तामें लहो भिन्न कछु लेखा ॥
निश्चय नामहु शून्न बिचारी । तामै है कारज यक भारी ॥
नाम डोरि दृढ़ गहै जो कोई । शून्न पार पथ पावै सोई ॥
शून्नकि पारपंथ जब पावत । बहुरि शून्नमें सो नहिं आवत ॥
शून्न रूप भवसागर धारा । अंड पिंड सब शून्न सँवारा ॥
भ्रमकरि शून्नमें खल प्रकाशे । जस मृगजल मरुथलमें भासे॥
फेन बुदबुदा वारि तरंगा । वायु प्रसंग बनावहु ढंगा ॥
जेहि औसर वायू नहिं चलही । गलके सकल मिले तेहि जलही॥
जल विकार सब जलहै जैसे । माया ब्रह्म जीव यक तैसे ॥
भ्रम करि नाम धरे बहु डोरा । एकब्रह्म तजि कतहु न औरा ॥
जेहि औसर जिव सोलखि पावै । एकै माह अनेक समावे ॥
दृश्य अनेक जो एक समाई । पिंड अंडकी थाह सो पाई ॥
थाह पाय जब जीव थिरोना । तब जान्यो हो चारु चिरोना॥

मैं हौ आदि मध्य अरु अन्ता । मोहि फुराफुर वेद बदन्ता ॥
पक्की तत्त्व देह जब पावै । तबनिजुघरजिव बहुरिके आवै॥
पक्की तत्त्व प्रकृत पच्चीसा । स्वसंवेदकी विधि जो दीसा ॥
ताकौ गह कच्चीको त्यागे । ऐसे योग युक्तिमें लागे ॥
तनकी कृपा योग अष्टंगा । ताको तज भज मनको अंगा ॥
मन अष्टांग योग उरधारो । स्वसंवेद जाको निरधारो ॥
तनकी कृपाकाज नहिं सरही । मन करनी जिवपार उतरही ॥
मनको रचित सकल संसारा । हो निवृत्त जिव मनके द्वारा ॥
तन मन यद्यपि मिथ्या दोई । मन करनी अति उत्तम होई ॥
तन है जाय आपनी बसमें । जेहि औसरआवै मन कसमें ॥
तन मन दोनों बश ह्वै जाई । तब निज रूप नजरमें आई ॥
ऐसे साधु जो जगमें आही । हरि ब्रह्मा शिव ध्यावै ताही ॥
ताकी गतिको सके बखानी । लखे न शारद वेद अरु बानी ॥

मौनीजि वचन विचार माला

दोहा–स्वसंवेद नहिं कहि सके, लक्षण सन्त महन्त ।
परसंवेद कहे कछू, संग प्रताप कहंत ॥

चौपाई

जिनकी गति अगम अगाधू । बानी वेद पारसो साधू ॥
स्वसंवेद गुण तासु न कहई ।तिनको भेद जीव किमि लहई॥
समदृष्टि सो साधू ऐसे । सोई ब्रह्म रूप मैं पैसे ॥
काहू नहिं सो दुःख दुःखावै । जिनकी दृष्टिमें साहेब आवै ॥
को हिन्दू को मूसलमाना । को ब्रह्म केहि शूद्र बखाना ॥
कौन यहूदी कौन नसारा । एकै ब्रह्मको सकल पसारा ॥
रह्यो चराचरमें सो पूरी । जाहि लखे हो सब दुःख दूरी॥
आप आप लख ब्रह्म सनेही । जहँ तहँ देखो नेरी देही ॥

मोहितजि और कतहु कोइ नाही । भ्रमकरि भिन्न भाव दरसाही ॥
मेरो मन अरू तन सब मेरो । तनमें मन मनमें प्रभु डेरो ॥
लखे अलखगति झगरा टूटा । जीव काल बंधनते छूटा ॥
अपनी देह सकल जग जानी । ताते सबहीको सनमानी ॥
काहूको नहिं करे निरादर । सब कोइ ओढ़े मेरी चादर ॥
स्वर्ग नरक मृत आपै आपा । जैसो कर्म तहां ले थापा ॥
सबदिल महल वहां प्रभुको है । आपै आप सर्वमें सोहै ॥
काहूको अनभल नहिं ताका । निजु अनभल ताते परिपाका ॥
औरको अनभल ताके जोई । अनभल अवश्य ताहिको होई ॥
एक मोगल क्रमकरे जो बनियां। तेहिढ़िग रह यक बैललदनियां॥
मोगल परोसी धोबी रहई । लादनको एक गदहा गहई ॥
जिमि औसर खर करे पुकारा । मोगल दुखित होय तेहिबारा ॥
प्रभुसे नीति अस विनय उचरई । यहि धोबीको गदहा मरई ॥
यकदिन ऐसे कारन भयऊ । बैल मोगलको तब मरि गेऊ ॥
तिहि औसर मोगल गहि रोषा । परमेश्वरहि लगावै दोषा ॥
केते काल खुदाई कीना । गदहा बैल अजौ नहिं चीन्हा ॥
ऐसेहि सकल जीव अज्ञानी । प्रभु कह दोष लगावहि प्रानी ॥
सो नहिं दोष लगावन योगा । सबजिवनिजु२क्रमफल भोगा ॥
परभल किये भला हो अपना । निश्चय यह प्रमाण करिथपना ॥
जो काहूको कछु दुःख देई ।सो दुःख अवश्य आप शिरलेई॥
जो सबला अबला दुःखदानी । सो दुख अपने सिरपर आनी ॥
मांसरुधिर जिन जाको चाखा । परगल काटि आपसुख राखा ॥
औरकोशिरनहिनिजु शिरकाटा । अपनो तनकर बारह बाटा ॥
कोटिन यतन करे किन कोई । बदला अमिट छुटैं नहिं सोई ॥

सत्यकबीर वचन-शब्द

अपनो कर्म न मेटो जाई ।
कर्मको लिखा मिटै धौं कैसे जो युगकोटि सिराई ॥
गुरु वशिष्ठ मुनि लगन सोधाई सूर्य मंत्र यकदीना ।
जो सीता रघुनाथ विवाही पलयक संचन कीना ॥
तीन लोकका करता कहिये बालि बध्यौ बरि पाई ।
एक समय ऐसी बनि आई उनहू औसर याई ॥
नारदमुनिको बदन बिगार्‌यौ कीन्हे कपिको रूपा ।
शिशुपालकी भुजा उखारी आप भये हरि ठूँटा ॥
पारवतीको बांझ न कहिये ईश न कही भिखारी ।
कहै कबीर करताकी बातें कर्मकि बात है न्यारी ॥

चौपाई

मेरो कर्म मोहि दुःख देता । जाने बिना भये वश प्रेता ॥
बदला भोगे आदि भवानी । बदला हरि हर अयशि आनी ॥
बदलाके कारन जिव झारी । भोगे दुःख भये संसारी ॥
दिल दुःखाव मति काहू केरो । सब तन अपने तन सम हेरो ॥
सबको दुःख सुख एक समाना । एकै रूप रूप सब जाना ॥
एकै रूप अनेक बरन है । एकै इन्द्री एकै तन है ॥
मनु सतरूपा वेदमें कहेऊ । सोई सकल रूप निजु गहेऊ ॥
चौरासी लख योनि उपानी । एकै अंग न और बखानी ॥
सबमें रमा सो अकथ अनूपा । सबको जानो मनु सतरूपा ॥
मनु सतरूपा आपै साहेब । देखि परे जगमें नाना ढब ॥
आदि पिता सबजग जिन हेरा । सो समदृष्टी सन्त बडेरा ॥
निर्वासनिक आदि ओंकारा । हिरनगर्भ वासना जो धारा ॥
भई वासना जगको कारन । दोय स्वरूप कीन तब धारन ॥

हिरण्यगर्भ चितचाह जो चाली । एक चना कीना द्वै दाली ॥
नारि पुरुष मिलि द्वन्द्व मचाया । ताते रचना राम रचाया ॥
स्वामी एक एक भे दासा । करे एक दूजाकी आसा ॥
वासना जब निवृत्त ह्वै जाई । स्वामी सेवक तब मिलिजाई ॥
जैसे प्रथम भयो द्वै ढंगा । तैसे दोनों होय करंगा ॥
सकल वासना लियौ बटोरी । द्वन्द्व खेल तब कतहु न हेरी ॥
मन इन्द्री कछु रहा न बाकी । निश दिन होय ब्रह्मकी झांकी॥
जस प्रथमै रह अंडकि गोली । तस ह्वै बहुरि वचनको बोली ॥
तन मन इन्द्रीकी गम नाहीं । परम रूप रमि अलख कहाहीं॥
लखै न कोई अलख गुरु देवा । जाने बिना करे सब सेवा ॥
जब जान्यौ तब सेवा नाहीं । मैं तू तह तब कछु न रहाहीं ॥
मोहिमें तूमें तोहि समाना । एक भयौ नहिं दुतिया जाना ॥
सकल बासना मनते हरई । पारब्रह्म जब दाया करई ॥
ब्रह्मके खोजी साधो भाई । कैसे ब्रह्म की खोज बताई ॥
भजनानन्दी संत सुजाना । ब्रह्म सर्वमय पूरण जाना ॥
जाना तौ पै मिले न ताही । बिना मिले कछु सुख है नाहीं ॥
जैसे नारि पुरुष बर होई । एक दूसरो जाने सोई ॥
जानेते कछु सुख नहिं सरसे । नारि पुरुष जबलों नहिं परसे॥
अरश परशते सुख सरसाना । तब मनहीमनमें सुखसमाना ॥
कहे कहा सो कहो न जाई । निज सखियनते सैन बुझाई ॥
सखीकि सैन सखी कोई बूझे । पियामिलनको सुख जेहि सूझे॥
और कोई जो पूछे जाई । चुप ह्वै रहै तबै मुसकाई ॥
ब्रह्मको सुख जो कोई लहई । गूँगा होय न सो कछु कहई ॥
लून पूतली निज मनठाना । सागर थाह लेनको जाना ॥
जलमें पैठत जल ह्वै जाई । ताकी खबर कहै को आई ॥

कीट पतंगसे पूछे बाता । दीपक गिरे कौन सुख आता ॥
तेहि पतंग अस वचन सुनावो ।तुमहि दीप ढिग चलि सुख पावो॥
कीट तबहि दीपक नियराया । पुनि पतंग ढिग सो चलि आया॥
आय पतंगसे वचन सुनाई । मैं कछु ज्योति स्वाद नहिं पाई ॥
तेहि पतंग बोला चिल्लाई । तैं किमि ज्योतिके सुखको पाई ॥
अरे मूढ संसारी कीडा । तोहि न व्यापी तन मन पीडा॥
सुख पतंग आसिक सो जाना । दीपकमें जो धाय समाना ॥
तू तो फिरा देखिके आगी । जाने कहा मूढ दुरभागी ॥
शीश काटि निज करमें लीजै । ब्रह्मके सुखमें तब चित्त भीजै ॥
चले जक्त सब देखी देखा । सार असार करे को लेखा ॥
भेड़ा चाल सकल संसारा । नर पामरको यह व्यवहारा ॥
सबकोई कह यह मेरो धर्मा । मेरो गुरू कह्या यह कर्मा ॥
सबते हमरो धर्म बडारा । सो बुधवंत जो करे विचारा ॥
चले अंधके पीछे अंधा । बिना विचार करे सोई धंधा ॥
यक शृगाल तेहि औसर बोला । ततछन तासु जाति मुह खोला ॥
वायस एक जो बोल उचारी । सबहि जातिगण तबहि पुकारी॥
कीटके पीछे कीट जो चाला । तैसे जक्त धर्म प्रतिपाला ॥
यक धोबी यक गदहा राखा । सोढर नाम तासुको भाखा ॥
घाटके ऊपर धोबी गयऊ । ताहि ठौर सोढर मरिगयऊ ॥
ताते धोबीको दुःख होई । सोढर सोढर कहिके रोई ॥
घाटके ऊपर धोबिन आई । रुदन करत धोबीको पाई ॥
पुनि धोबिन निजघर फिर आई । सोढर कहिके रुदन कराई ॥
राजाकी रानी तेहि बेरी । धोबी गृह पठयो निज चेरी ॥
रुदन करत धोबिनिहि निहारा । सोढर सोढर करे पुकारा ॥
चेरी पुनि तहँते फिरि आई । सोऊ रुदन करे बिलखाई ॥

बांदी विलपत देखा रानी । रुदन बिलाप सोऊ तब ठानी ॥
राजा जब निज महलमें आया । रुदन करत रानीको पाया ॥
रानी रोवै सोढर कहि ताहा । सुनि सो रुदन रोवै नरनाहा ॥
राजा रुदनकरन जब लागा । नग्र नारि नर धीरज त्यागा ॥
सकल नग्रमें परा खँभारा । नृप मंत्री तब तहँ पग धारा ॥
मंत्री नृपते बचन उचारी । कारन कहा रुदन भो भारी ॥
तब नरनाथ बचन अस कहेऊ । दुखी सकल सोढर मरि गएऊ ॥
सोढर कौन सो मन्त्री बूझा । तब नृप कह्यौ मोहि नहिं सूझा ॥
रानी को मैं रोवत देखा । कीन्ह्यौ मैं पुनि सोई लेखा ॥
रानीते जब पूछा जाई । सोढर कौन सो देहु बताई ॥
रानी कहे न जाने सोढर । मैं रोई वांदीके औढर ॥
जब पूछै बांदीसे जाई । सोढर कौन कहा बतलाई ॥
बृषली बोलै मैं नहिं जानी । धोबिन देखि रुदन मैं ठानी ॥
धोबिन कह मोर धोबी रोई । सो लखि सोग मोहिको होई ॥
धोबीसे जब पूछा जाई । सोढर गदहा नाम बताई ॥
ऐसेही अंधा संसारा । देखा देखी कर्म पसारा ॥
जिनके हृदये माह बिचारा । सो नहिं लीकलीक पग धारा ॥

दोहा—लीक लीक गाड़ी चलै, लीके चलै कपूत ॥
तीन लीकमें नहिं चलै, सूरा सन्त सपूत ॥

चौपाई

जगमें कतहुँ न तुर्क न हिंदू । सकल देखिये नाद अरु बिंदू ॥
जेते नाद बिंदु मय बंदा । सबही कर्मके फंदमें फंदा ॥
जैसो कर्म करे जो कोई । तैसोई फल पावै सोई ॥
कर्म कुरूप स्वरूप सँवारा । कर्महि ऊँच नीच गति डारा ॥
कर्महि दुःखसुख जीव भोगावै । कर्महि सकल योनि भरमावै ॥

अष्ट कर्म विधि जैन बखाना । बहुरि मिमांसा कर्मप्रधाना ॥
सत्यकबीर कहै पुनि ऐसे । सब जिव कर्म फन्दमें पैसे ॥

सत्यकबीर वचन–कर्मखंडकी रमैनी

कर्महि धरती पवन अकाशा । कर्महि चंद सूर परकाशा ॥
कर्महि ब्रह्मा विष्णु महेशा । कर्महि ते भये गौरि गणेशा ॥
सात वार पंद्रह तिथि साजा । नौग्रह ऊपर कर्म बिराजा ॥
कर्महि राम कृष्ण औतारा । कर्महि कंस रावन संसारा ॥

साखी–कबीर कर्म रख सागरबंध्यौ, सौ योजन मरजाद ॥
बिन अक्षर कोइ ना छुटै, सो अक्षर अगम अगाध ॥

रमैनी

सो सागर भवसागर धारा । नहिं कछु सूझै वार न पारा ॥
तहँवा बावन अक्षर लेखा । कर्मरेख सबहिन पर देखा ॥
कर्मरेख बांधा सब कोई । खानी बानी देख बिलोई ॥
वेद कतेव कर्मही गाया । कर्महिको निह कर्म बताया ॥
सतगुरु मिले तो भेद बतावे । कर्म अकर्ममध्य देखलावे ॥
कर्मरेख तहँवा लगि राखा । जहँलगि वेद व्यास कछु भाषा ॥

साखी–कबीर कर्मफांस छूटे नहीं, केतो करे उपाय ॥
सतगुरु मिले तो ऊबरे, नातो परलय जाय ॥
कबीर बहु बंधनते बांधिया, एक विचारा जीव ॥
जीव विचारा क्या करे, जो न छुडावे पीव ॥

रमैनी

सूरा होय सो सन्मुख जूझै । भोंदू शब्द भेद नहिं बूझै ॥
दुखिया होय रैन दिन रोवे । भोगी भोग करे सुख सोवै ॥
दुःख सुख भोग सोग सम जाने। भली बुरी कछु मन नहिं आने॥
भली बुरीको करे सो त्याग । निश्चै पावै पद वैराग ॥

साखी—आसन साधे आपमें, आपा डारे खोय।
कहैं कबीर सो योगी, सहजे निर्मल होय॥

कुण्डलिया

मानुष है नहिं कोई मुवा, मुवा सो डंगर ढोर।
चौरासी भर्मंत फिरे, टूटै न कर्मकी डोर॥
टूटै न कर्मकी डोर, भोर बुधि जहँ तहँ भटके।
लहे न ज्ञान अनूप, कूप भवमें पुनि पटके॥
पुनि पुनि पटके काल, कर्म बेरी पग भारी।
वचन कह यक मृग चोट, जहां लख कोट शिकारी॥

चौपाई

कृपा करे गुरु धनी दयाला। जीवहि खच लोक ले चाला॥
ताकी कृपा योग जब होना। लगे मही तब कालको टोना॥
कृपा योग जबलों नहिं लोई। कृपा कौनविधि तापर होई॥

सत्यकबीर वचन

धर्मदास तोहि लाख दोहाई। सार शब्द बाहर नहिं जाई॥
सारशब्द बाहर जो परि है। बिचले पीढी हंस नहिं तरि है॥
युगन युगन तुम सेवा कीनी। ता पीछे हम इहां पगदीनी॥
कोटिन जन्म भक्ति जब कीन्हा। सारशब्द तबही पै चीन्हा॥
अंकूरी जिव होय जो कोई। सारशब्द अधिकारी सोई॥
सत्यकबीर प्रमाण बखाना। ऐसो कठिन है पद निर्वाना॥
पै दुतिये विधि कह्यो बहोरी। जापर सद्गुरु कृपा न थोरी॥
धर्मदास प्रति ऐसे कहेऊ। मांगु जो कछु तेरो चित चहेऊ॥
धर्मदास तब वचन उचारा। तारो मोहि सहित परिवारा॥
पिता पितामह सखा समेता। सबहि पारकर कृपानिकेता॥

तेहि अवसर सतगुरु विहसाना । का मांगे कछु मांग न जाना ॥
तारो सकल सृष्टिको भाई । तुम तो आप रहे अरुगाई ॥
यामें नहिं कछु दोष तुम्हारा । कालपुरुष तुमरी मति मारा ॥
ऐसो समरथ सत्य कबीरा । पलमें सब क्रम कागज चीरा ॥
कोटिन जन्म जो परा भुलेषा । करे जो कृपा चुकावै लेखा ॥
जहँ तहँ देख आप सद्गुरु है । नहिं कहुँ असुर नहीं कहुँ सुर है॥
असुर भाव जब सुरको आया । ता छन ताको असुर बनाया ॥
सुरते असुर असुर सुर होई । नारिते पुरुष पुरुष तिय सोई ॥
नीचते ऊंच ऊंचते नीचा । उत्तम मध्यम योनिमें खींचा ॥
ताते देखो दृष्टि पसारी । सकलधर्म प्रभु आप बिहारी ॥
मेरे मतसों सब धर्मनमें । खेले खेल सकल कर्मनमें ॥
जो कोइ चीन्है लाल बिहारी । दुबिधा सकल दूरकरि डारी ॥

सत्यकबीर वचन

राम रहीम करीमा केशव हरि हजरतहै सोई ।
गहना एकै दृढ है गहना दुतिया और न कोई ॥

चौपाई

सब धर्मनमें आपै खेले । एक दूसरेसे नहिं मेले ॥
भर्मत सारी सृष्टि भुलानी । होय चहूँदिश ऐंचातानी ॥
झूठ सांच जब लख सविवेका । झूठको तज गहु सत्तको टेका ॥
यह संसार सकल भ्रम छाही । भ्रमकरि सर्व सत्य दरशाही ॥
एक अनेक अनेक भो एका । ज्ञानते होय सो एक अनेका ॥
यथा कांचके मंदिर माहीं । कोटिन मणि मानिक रहजाहीं ॥
झाड़ फनूस अनेकन टांगा । तामें यक भ्रम दीपक जागा ॥
भ्रम दीपक जब तहां प्रकासा । कोटिन दीप मंदिरहि भाषा ॥
यक प्रतिबिम्ब अनेकन देखो । वार न पार लेख कह लेखो ॥

यक भ्रम दीप जो दियो बुझाई । सकलो भास नाश ह्वै जाई ॥
ऐसे एकते भयौ अनेका । बहुरि अनेक एकही एका ॥
यहि विधिसकलजक्त यहलागा । जस भ्रम दीप कांचगृह जागा ॥
ज्ञान उदयते रहै न कोई । यथा नखतगण जलमें जोई ॥
जल सूखे नहिं दरसै तारे । कोई नहिं देखजात किहि द्वारे ॥
ऐसेहि सकल जक्त यह थापा । सबमें शोभित आपै आपा ॥
ब्रह्म सब देसी लख ऐसे । यथास्फटिकमणि देखी तैसे ॥
यही स्फटिक मणिकेर सुभाऊ । जहँजसमतितसगति दरसाऊ ॥
जौन रंग तेहि सन्मुख आना । गहै स्फटिक मणि सोई बाना ॥
कर्मरंग जाढँग सघट्टा । देखफटिक मणिमें सोई ठट्टा ॥
राता पीता आदिक रंगा । होयस्फटिकमणि को सोई ढंगा ॥
सर्वांगी अस ब्रह्म बखाना । कर्म बनाव अनेक बिधाना ॥
जहँ जसकर्म तहां तस भासू । सो निरलेप है स्वतह प्रकासू ॥
कर्मडोरि जबलों नहिं तोरे । अपनो रूप न पावै भोरे ॥
कर्मबंधते अलग जो होई । परम सोहावन उज्जल सोई ॥
कर्मसूतमें बंधा जो रहई । नाना रंग ढंग गुन गहई ॥
जेते धर्म जक्तके मांही । सबमें सोई ब्रह्म दरसाही ॥
जो दरसै सो सब भ्रम भासा । नहिं दरसै तेहि कौन प्रकाशा ॥
जो नहिं कहन सुननमें आवै । ताको कथा कौन कहि गावै ॥
मन बानीकी गम जहँ नाहीं । पुनि मनबानी किमि कहताही ॥
नैनते सकल जक्त दरसाई । पै निज रूप न सो लखिपाई ॥
देखे आंख सुने सब काना । रसना रसिक गंध गह घ्राना ॥
त्वचा स्पर्श तेहीको अहई । सबइंद्री निज निज कर्म गहई ॥
आंखिन रशनाको गुन जाना । स्वाद भेद नहिं सो पहिचाना ॥
कान न कबहु रूपको देखे । नाक न कबहु स्पर्शको लेखे ॥

इंद्री निज निज कर्महि योगा । निजनिज भोग और नहिं भोगा॥
सो इन्द्री जेहि ब्रह्म लखाही । कोई इन इन्द्रिनमें नाहीं ॥
जातें आतमको पहिचाना । ताकी है कछु और ठेकाना ॥
मौन दशा ताते गह साधू । यह सब दीखैं भर्म उपाधू ॥
बिन जाने जो मौन गहाई । सो नहिं साधु मूर्ख कहलाई ॥
जौ कछु कहो कहत नहिं बनई । जो चुप रहौं रहत नहिं बनई ॥
आपै आप खेल सब खेले । भर्म कूपमें मोहि क्यों ठेले ॥
रसै बसै सब माह समावै । अर्श पै अपनौ तखत बतावै ॥
जो जाने सो कैसे कहई । नहिं जाने बहु बानी बहई ॥
सबही धर्म जक्तमें तेरो । कहो तो दोष देय सब मेरो ॥

सत्यकबीर वचन

काल दयाल हमै है भाई । छोड़ो दुबिधा काल पराई ॥
सबही धर्म ताहि सतगुरुके । चीन्हे बिनाकाल नहिं मुरके ॥
स्वसंवेदमें कहा बखानी । ताहि बूझि सुख पावै ज्ञानी ॥
काल पुरुष सतपुरुष समायौ । सत्य पुरुषकी देह जो पायौ ॥
सत्यपुरुष दीनों निज देही । कालपुरुष गहि लीनो येही ॥
विषयभोग सब कालकी अंगा । देखहु स्वसंवेद परसंगा ॥
विषयवासना जिहि जिवजागी । सबको धर्मराय है भागी ॥
निर्विकार अरु विनय विहीना । सकल वासना त्याग जोकीना॥
सो समस्त सतपुरुष सनेही । सत्यपुरुष पुर पहुँचे येही ॥
इन्द्रीभोग विषय जो ध्यावै । धर्मरायके धाम समावै ॥
सदा रहै सो कालके फंदा । सो नहिं सत्यपुरुषको बंदा ॥
रस प्रीतिसे भक्ति जो करही । विषय विहायनाम निति रहही ॥
कालहिमें दयाल प्रकटाई । गहि करतासु लोक ले जाई ॥
सत्य पुरुषको भक्त कहावै । विषय विकार तेजो मनलावै ॥

प्रेमभक्ति जामें नहिं कोई। नहिं संतनकी सेवा होई॥
सो सतपुरुषकि भक्तिसे गिरता। काल पुरुषके बंधन परता॥

छंद—सत्यपुरुष जो निज बपुवरकह काल पुरुषको दीन्हेऊ।
ताही पुरुषमें काल पुरुष कालमें तेहि चीन्हेऊ॥
अंतरो बाहर दोऊ ठाहरमें निरखि भल लीन्हेऊ॥
मोरे मते सतपुरुष सबही दूर दुबिधा कीन्हेऊ॥

चौपाई

जाहि धर्ममें जो जिव रहई। जब नखशिखसुकर्म सब गहई॥
तब सांचा सतगुरु समुहे है। परम धर्मको मारग पैहै॥
जबलों नहिं अति उत्तम करनी। परमपंथ तबलों नहिं धरनी॥
हो यथा यक गोलाकारा। चहुँदिश ताके घेर सँवारा॥
मध्यमें बिन्दु घेरके आही। घेरते बिन्दुको लीक जो जाही॥
सो लकीर सब होहि बराबर। जौं नहिं इंग बिङ्ग मारगधर॥
तैसे यह मृतलोक बखानो। सब धर्मनको थोक बखानो॥
गोलाकार जान यह धरनी। ब्रह्मबिन्दु सतगुरुको बरनी॥
लीक समान धर्म सब जगको। गह सब ब्रह्मबिन्दु मारगको॥
जौ सुकर्म सब उत्तम होई। पहुँचे ब्रह्मबिन्दुको सोई॥
टेढ़े टेढ़े चले जो कोई। ब्रह्मबिन्दु पहुँचे नहिं सोई॥
इमि सब धर्मनके आचारी। टेढ़ चाल जब तज एक बारी॥
ब्रह्मबिन्दुको तब सो पाई। ठाढ होहि तापर पुनि जाई॥
सीधे खडे होहि तेहि ऊपर। तब चहुँओर निहारेहि भूपर॥
सब धर्मनकी दशा निहारी। केहि कर्मन अरुझे नरनारी॥
ब्रह्मबिन्दुपर पहुँचे जो कोई। सीधे ठाढ न तापर होई॥
शुद्ध रूप तेहि दृष्टि न आवै। फेरि फेरि भव भटका खावै॥
बिन्दुपै सीधे खड़े भे आई। शुद्ध स्वरूप ताहि दरशाई॥

शुद्ध स्वरूप जीव जब हेरी। करे न सो भवसागर फेरी ॥
गोलाकार स्वरूप बनावो। तामें सकल खेल दरशावो ॥
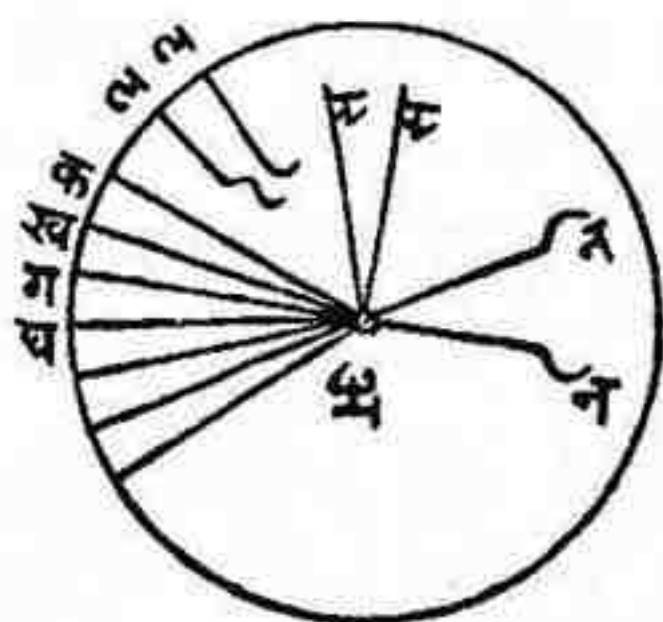
ब्रह्मबिन्दु है आदि पुकारा। कखग आदिकसबधर्म पुकारा॥
निज निजमत जो आछे पाला। तौ सब ब्रह्मबिन्दुको चाला ॥
टट्टा टेढ़े मारग जाहीं। ब्रह्मबिन्दु पहुँचे सो नाहीं ॥
सस्सा बिन्दुपे पहुँचै जाई। सीधे खड़े भये तहँ आई ॥
पूरन ज्ञानदृष्टि तिन पायौ। परम रूप रमि भवनहि आयौ॥
नन्नाहू लह बिन्दु ठेकाना। ठाढ़ होनगति सो नहिं जाना॥
टेढ़े जायके ठाढे भयऊ। ताते शुद्ध स्वरूप न लहेऊ ॥
गोलाकार जो कथा बखानी। यह संसार सकल है पानी ॥
पानीमें जिव गोता मारा। बूड़ि जाय पुनि शीश निकारा॥
बूडे उछले पार न पावे। लख चौरासी माह समावे ॥
जिमि शिशुमारचक्र यह फिरता। यकपलभरिनहिं ताको थिरता॥
जो लख्यादिक चक्रमें आही। सबही ताके संग भ्रमाही ॥
भ्रमनकरे निशिदिन सब सोई। तिनको थिरता कबहुं न होई ॥
ऐसहि गुरू संग सब चेले। भवसागरमें बाजी खेले ॥
उत्तर दक्षिणको जो छोरा। तहँ जो पहुँचहो थिर तेहिठौरा ॥

जो कोई पहुंचे तेहि खूटा । ध्रुव तारा सम भ्रमनते छूटा ॥
ज्ञानी पहुंचे कुतुबके किल्ले । अटल होहि सो बहुरिन हिल्ले ॥
सतगुरु किला जो ऐसे पैहै । बहुरि न सो भवमें भरमैहै ॥
यह दृष्टांत जो कोई बूझै । निश्चय परम पंथ तेहि सूझै ॥
सकल धर्मको एकै साई । सब पालै निज पुत्रकि नाई ॥
एक सोनार गढै सब गहना । जैसो कर्मरूप तस लहना ॥
सोन रूपको तार बनावै । गढ़िगुढ़ि ठोकि ठांकि सुधरावै॥
ठोंकि ठांकि जब सीधा करई । यंत्रमें तबहि तारसों धरई ॥
खैंच तार धरि यंत्रके माही । इंग बिंग तब सब मिट जाही ॥
ऐसहि सर्व धर्म जग केरो । टेढ बिंग व्यौहार जो हेरो ॥
धर्म कबीर धरहि जेहि बारी । खोट कर्म तब दूर पवारी ॥
तार समान सकल मत मंत्री । धर्मकबीर सोनारको यंत्री ॥
दोय प्रकार वासना अहई । भली बुरी जाको सब कहई ॥
दोनों भवसागरमें डारा । कहा करे यह जीव बेचारा ॥
अर्थ अरु धर्मकाम अरु मोखा । चारों त्यागे साधु सो चोखा ॥
चारते पार और जो होई । सतगुरु भेद बतावै सोई ॥

सत्यकबीर वचन

साखी-तीरथ गयेते एक फल, संत मिले फल चार ।
सतगुरु मिले अनेकफल, कहै कबीर विचार ॥

चौपाई

कर्मको फल नर पावै कैसे । भोजन रस तन व्यापै जैसे ॥
जैसे भोजन जो को खाई । ताहीको गुन तामें आई ॥
आकशमात कर्म फल पावत । दुःखसुखसबजिवकोप्रकटावत॥
जस बासना कर्म कर तैसा । तेहि अनुसार धर्म गह ऐसा ॥
सब निज निज वासना गहाई । ता तोषनकी करे उपाई ॥

नवी मलेक्षस्थानको यक रह । प्रभुप्रति विनतीकरि ऐसे कह ॥
हे प्रभु मोहि तियरति बलथोरा । यह बरदेव होय सो जोरा ॥
तेहि नभ वानी कीन पुकारा । रति कारन कर मांसु अहारा ॥
मांसु खान लागा तब सोई । जान्यो प्रभुकी आज्ञा होई ॥
जस मनोरथ तैसी प्रभु आज्ञा । सत्य कहो करिके परितिज्ञा ॥
जस वासना जीव उर खोले । ताको यतन अकाशते बोले ॥
तथा फिरिशते स्वपना सुथरे । तस कलाम अल्लाको उतरे ॥
मिश्रसे जबहि यहूदी चाले । जब उजाड़में आय निराले ॥
मांसु खान कह प्रभु प्रतिटेरी । दियौ लगाय बटेरकी ढेरी ॥
खातहि खात मृत्यु तेहि डाला । कर्मको फल पायौ ततकाला ॥
जिन जिन मांसु खानको रोये । बचन एक प्रान सब खोये ॥
बीस बर्षके ऊपर जोई । सब मरि गयौ बचा नहिं कोई ॥
ज्ञान बिनाको प्रभु पहिचाना । ताकौ धर्म न कोई जाना ॥
जैसो धर्म धरे जो कोई । तैसी गति निश्चय लह सोई ॥
कोई स्वर्ग नर्कको भोगा । कोई अधर मृत्यु पुर लोगा ॥
जीव वासना प्रेरि लेआवे । ताही गतिमति स्थित करावे ॥
तीनों पुर पसरा यमजाला । कोइ बचै जेहि राख दयाला ॥

सत्यकबीर बचन

तीनों लोकमें लागी आग । कहैं कबीर कहँ जैहो भाग ॥

चौपाई

उभयवासनां ते जिव अटका । छूटै न आवा गौन को खटका ॥
कालहि रचै कालही पोषै । कालहि सब रचनाको सोषै ॥
कालको कृत कालही खैहै । कोई बिरला गुरुगमबचजैहै ॥

कुंडलिया

निर्विकार आतम सदा, बंधाकर्मकी डोर ।
मरकट नटके हाथ जिमि, फिरताखोरिन खोर ॥

फिरता खोरिन खोरि, कंठमें कर्म जञ्जीरा।
दर दर नाचत जाय, पाय तन मन बहु पीरा॥
पीरा लह मतिमंद, होय नहिं बन्द खलासी।
बंद दयाल जेहि काल, कालकी काटे फांसी॥
कबीर खड़े बाजारमें, गल कट्टोंके पास।
जो कोई करे सो भरेंगे, तुम क्यों भये उदास॥
तुम क्यों भये उदास, भाष कर्महिको सारा।
कर्मको रचित जहान, खान चहुँ कर्म सँवारा॥
कर्म सँवारा दर्ब, सर्ब जहँलों जग दरसै।
आतम तो निरलेप, एक सम सबमें सरसै॥
हद्दमें चल सो मानुवा, वेहद चले न कोय।
हद्द बेहद्दके बीचमें, रह्यो कबीरा सोय॥
रह्यो कबीर सोय, कोय नहिं ताको परखै।
परखै संत सुजान, ज्ञानके नैनन निरखै॥
निरखै ज्ञानके नैन, परख पूरन सो पावै।
जहँ तहँ दरशै आप, ताप तिहुँ दूर बहावै॥
हद्दमें चलै सो मानुवा, बेहद चलै सो साध।
हद्द बेहद्द जो दोनों त्यागे, ताको मता अगाध॥
ताको मता अगाध, आध अरु व्याध न लागे।
कर्म जनित सब रोग, भोग भवमें नहिं पागे॥
नहिं पागे भवभोग योग, जग नाता तोरे।
टूटे न भजनको तार, प्रीति नामहिते जोरे॥
हिंदू कहीं तो हौं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पांच तत्त्वको पूतला, खेलै गैबी माहिं॥
खेलैं गैबी माह गैबको गैबी जाने।

कहन सुनन कछु नाहिं, विचार हृदय निजआने ॥
आने हृदय विचार, चारु चिर चोर चपेरे।
मूसे जो घर मोर भोर, निश ताको हेरे ॥

चौपाई

काल कराल आपही जानी । ब्रह्मा विष्णु महेश भवानी ॥
षटदरशन सोई प्रभु थापा । सब पंथनमें आपै आपा ॥
मूसा ईशा महम्मद आदिक । सोई सब मतके मरजादिक ॥
सब धर्मनको सोइ अचारज । सबहीको कीने प्रभु कारज ॥
सब ही धर्म ताहिको जानी । प्रणवों सबहि मनोक्रम बानी ॥
सोई प्रभु सबही ये देखा । बपुरा जीव करे कह लेखा ॥

छन्द–आप खास है आप दार है आप खेल खेलायऊ ।
मलसोध जीव प्रबोध कीनो बौध होकर आयऊ ॥
जग जगन्नाथको माथ नावैं रूप और बनायऊ ।
थापे महातम बौधको खुद बौधीदास कहायऊ ॥

चौपाई

दोय पुत्र ब्रह्माके भयऊ । यक सुर दुतिय असुर जो कहेउ ॥
सतोगुनी सुर कह सब कोई । विषय विकारी असुर सो होई ॥
तीन लोकमें विषय विकारा । चौथा लोक विषयते न्यारा ॥

सत्यकबीर वचन–चौपाई

विषय विकार मान मद जेते । सो सब प्रभु असुरनको देते ॥
जाने थोर बहुत जो कहई । तीनों काल मूर्ख सो रहई ॥
जेते जाने तेते जो भनिये । मध्यम गतिमें ताको गनिये ॥
जाने बहुत कहे जो थोरा । सोई ज्ञानी सब शिरमौरा ॥
सब धर्मनको भेद जो पावै । ताकी बुद्धि शुद्ध ह्वै जावै ॥
जाके धर्म ताहिते जांचो । तब लखिपरे झूठ कह सांचो ॥

जौन धर्मगति यह चित सुनिया। ढोढों ताको पंडित गुनिया ॥
पक्षरहित जो बात बतावै। तामें कछू कसर जौं आवै ॥
तौ पूछो औरन बुध लोई। निजबल बुद्ध बतावे सोई ॥
एक कि भूल दूसरा कहई। यहिविधिचतुरशंकनिजदहई ॥
औरको धर्म औरते बूझै। ताको दिनदोपहर नहिं सूझै ॥
वायस मिल वायसहि प्रशंसा। हम सम नहिं ब्रह्माको वंशा ॥
हमसम और न बोल सुधारा। जाने कह कोकिला गँवारा ॥
सो सुनि भूलि जाहि जिवसंठा। जानन कागहि जो कटुकंठा ॥
जिमि उलूक निजपरको ठानू। कानते सुने न देखे भानू ॥
तामें सब कोइ मिथ्या करई। जगमें कतहु न सूरज अहई ॥
ताकी शाख भरनको साचा। चमगुदरी उठि बोली बाचा ॥
सुनि लीजे उलूक मम भ्राता। जो कछु कहो सत्य तुम बाता ॥
मैं कबहूँ दिनकर नहिं देखा। कहै जक्त सब झूठा लेखा ॥
भरे बहुरिके ताकी साखी। आय छछुन्दर ऐसे भाषी ॥
सत्य बचन तुम दोहुकी आही। दिनकर तीनकाल कहुनाहीं ॥
ऐसहि अंधहि अन्ध सराहत। जो दिनपतिहि दूरकरचाहत ॥
तिनके वचनमें जो जिव बंधे। तिनसमान सो सबही अन्धे ॥
जाघर पके हरामको दाना। तिनको धर्म कर्म बिन माना ॥
जो कोई करे हराम कमाई। आप खाय अरु और खिलाई ॥
जो हरामको दाना देहै। ताको दंड आप शिर लैहै ॥
खाय हराम हरामही करि है। करि हराम भवसागर परि है ॥
जो कोई अन्न हरामको खाई। ताकी बुद्धि अन्ध हो जाई ॥
बुद्धि विभंग होय जब जाको। धर्मकथा भावै नहिं ताको ॥
अन्धकार जब हृदयें घेरे। शुद्धपन्थ सो कबहु न हेरे ॥
खाय हराम हरामी जायो। मातु पिताकुलकानि गवायो ॥

कारि श्रम शुद्ध अन्नभक्ष जोई । ताकी कृपा शुद्ध सब होई ॥
भक्ष सुअन निजधर्म जो पाला । ज्ञान दृष्टि पावै ततकाला ॥
विषकी बेल है यह संसारा । चहुँदिश आवै विषकी झारा ॥
जलथलमें विष रहा समाई । बिष नहिं तजै भजै चितलाई ॥
विषहीमें निज भौन बनाई । बिषय भोगि विषको तनपाई ॥
सबही सन्त श्रुति कहे बखानी । नरस्वरूप नारायण जानी ॥
लिखो वेद वेदान्त पुराना । तौरे तो इञ्जील कुराना ॥
सब ही मिल करते निरधारा । नर ईश्वर निज रूप सँवारा ॥
निश्चय नर नारायण देही । पै जब ईश्वर गुनगह येही ॥
जबलों ईश्वर गुन नहिं गहई । संज्ञा जीव तासुको रहई ॥
ताते जीव शीव शिव कहिये । विषयबिकारनतनमन गहिये ॥
जब सबही शुभगुनगहि लीना । ब्रह्मस्वरूप ताहि कहि दीना ॥
ब्रह्मस्वरूप आप जब मंडा । तब रचि सके कोटि ब्रह्मण्डा ॥
सिरजै पोष प्रलय करिडारी । पुण्यपाप नहिं ताहि बिचारी ॥
जिमि शिशुमाटीधूल खेलोना । नाना भांति रचै मनभौना ॥
खेलि खेलि पुनि मिट्टी मेला । ऐसहि ब्रह्म सृष्टि को खेला ॥
सकल सृष्टिको करता होई । ताको नाम जपै सब कोई ॥
जो जिव विषयनमें लपटावै । दिन दिन तुच्छ देह सो पावै ॥
जब जब तुच्छ अन्त ह्वै जाई । नरकनमें निज भोन बनाई ॥
ताते विषई जीव सबनकी । विषयबिहिन देह ईश्वरकी ॥

सत्यकबीर वचन

साखी—कबीर कबीर तु क्या करो, साधो अपना शरीर ।
पांचो इन्द्री वश करो, तुमही दास कबीर ॥

बुल्लेशाह वचन

काम क्रोध लोभ मोह हंकार । पञ्जो कड्डवां जू दो मार ॥
इन्हा करवी है बदवो । बुल्ला आपे अल्लह हो ॥

यह संसार दुसह दुःख दागा । बिरत बिचारी सन्तसो त्यागा॥
कौन राम कौनी विधिजपना । कौन ठौर तेहि प्रभुको थपना॥

सत्यकबीर-वचन

साखी-रामजपत है नामको, नाम जपता है थीर ।
ताहूते कछु अपर है, ताको जपै कबीर ॥

चौपाई

उत्तम धर्म जो कोइ लखि पैये । आप गहो अरु और गहैये ॥
ताते सत्यपुरुष हिय हर्षै । कृपा वारि तब तोपर वर्षै ॥
सत्यकबीर केर परमाना । यहि विधि तैसो करे बखाना॥
जो कोउ जीवहि राह बतावे । परमपुरुषकी भक्तिमें लावे ॥
ऐसो पुण्य तासुको बरना ।एक मनुष्य प्रभु सन्मुख करना॥
कोटि गाय जिमि गहे कसाई । ताके करते लेत छोड़ाई ॥
परम पुरुषते जब जिव जूटै । काल कसाई करते छूटै ॥
भक्ति कठिन अतिशय कठिनाई । बिना भक्ति कोइ पार न पाई॥
भक्ति भवन अति उत्तम ऊंचा । इनसीढी बिरला कोइ पहुँचा॥
लागे तहां त्रिविधि सोपाना । एकते एक विचित्र बखाना ॥
रजगुन तमगुन सतगुन बरतो । द्वै तजिके तृतिये पग धरतो ॥
जब सतगुन सीढीपर चढ़िये । तब तहँ ज्ञान अगोचर पढ़िये॥
पढ़िके ज्ञान भयो जब पक्का । तब सो भक्ति भवनको तक्का ॥
भक्तिभौत जब चाहत चलिये ।तब सतगुरु प्रतिहारते मिलिये॥
ताहि पौरि यहि भेट चढ़ावो । भक्तिभौन तब पैठन पावो ॥
तन मन धन सब अर्पन कीजै । शिर उतारि तेहि चरणधरीजै॥
जो दयाल हो सो प्रतिहारा । भक्तिभौन तब हो पैठारा ॥
भक्तिभौनको भेद जो पाया । त्रिगुन पौरि सो बहुरि न आया॥
आदि अन्त सतगुरु गुनगावो । जिन तोहि भक्तिभौन बैठावो॥

भक्तिहि भक्ति भेद बहुतेरा । गहसो भक्ति भेट भवफेरा ॥
विमल भक्ति गहिये मन लाई । जाते त्रिगुनातीत कहाई ॥
आप आप जिव आप फँसाई । आपै बँधा आप दुख पाई ॥
जस कृमयक जेहि कह खुसियारी। ताकी ऐसी कथा उचारी ॥
सो ऐसो निज भौन बनावै । आपको तामें आप फँसावै ॥
आप चरित ग्रह बंधै आपू । काहूको कछु दोष न पापू ॥
ताहीमें सो फँसि मरिजाई । विविध भांतिसे सो दुखपाई ॥
बंधा तौ पै खुलै न कोई ।जब लगि सतगुरु कृपा न होई॥
हाथ पांव पटकै औ रोवै । तब गुरुकृपा केर भ्रम खोवै ॥
जाति पांति कुल कानि गवावै । भली बुरी कछु चित्त नहिं ल्यावै॥
सकल नेहको नाता तोरे । प्रीति सदा सतगुरुसे जोरे ॥
वेद कितोब शरा अरु सुन्नत । सो नहिं कछु निज मनमें उन्नत ॥
यह सबही दुनियांकी फांसी । ताते नहिं भेंटे अविनाशी ॥

कवित्त–शरीअतकी सलाई जिव आँखन चलाई भय अंध यमबन्ध धोखधन्धमें परत है । कोई कह हम हिंदू हौ जो ऊंचे कुलबिंदू कोई कह हौं ईसाई ईशा आसराध रत है ॥ कोइ वह मुसलमान होही साबित ईमान मारो काफिरन सारा जंग जेहाद करत है । नहिं चीन्हे कोइ देव करे भरम कि सेव गुरु सैन बिन येव लड़ि लड़िके मरत है ॥

सत्यकबीर वचन

मुसलमानकी काटी चमड़ी हिंदूकी बेधे कान ।
कहे कबीर इस बोलतेको पहिचान हिंदूकी है मुसलमान ॥

चौपाई

जीवधर्म पुरुषारथ गोगू । ताते सुख पावै सब लोगू ॥

कछुक कहो पुरुष पुरुषारथ। जो हित स्वारथ अरु परमारथ॥
शिव दधीच हरिचंद समाजा। बलि विक्रम करणादिक राजा॥
सूराशाह सिकन्दर हातम। हनुमत भीषम द्रोण भाषेतिम॥
ब्रह्मा हरि शिव मनु सतरूपा। गोरखदत्त कि कथा अनूपा॥
कौशिक व्यास वशिष्ठो नारद। शृंगी शुक विज्ञान विशारद॥
केते ऋषि मुनि करनी करहीं। कीरति जासु जक्त उच्चरहीं॥
जीअत ही साधू जो मरेऊ। सूरसती शुभ करनी करेऊ॥
साकजके हरि कानन कहई। स्वान शृगाल पेट तेहि भरई॥
सूर सन्त इमि करनी करही। जक्त जीव ले पार उतरही॥
तप बल शेष धरे महि भारा। तपबल ब्रह्मा सिरजन हारा॥
तप बल विष्णु जक्तको पोषै। तप बल शंभु ताहि पुनि सोषै॥
तप आधार जक्त जगदीशा। तप बल जीव बने हैं ईशा॥
जैसे जगमें सूर सयाना। निजभुजबल अरिदलदलनाना॥
करि श्रम सुखी भये सब सोई। तन धन मोह स्यार सब रोई॥
जहँ लगि जब विद्या चतुराई। पुरुषारथसे सब कछु पाई॥
आलसी जीवको विद्या नाहीं। धन नहिं होय अविद्या पाहीं॥
निरधनको कोइ मित्र न होई। बिना मित्र निरबल नर सोई॥
निरबलको सबही दुख घेरे। दुखिया दीन तुच्छ जग हेरे॥
पुरुषनको पुरुषारथ चाही। नारि पतिव्रत धर्म निबाही॥
मृदु सज्जापर सोवनहारे। भय सो कीट पतंग बेचारे॥
विविध प्रकार विषय जिन भोगा। अंतकाल सहसो सब शोगा॥
मचै जबै घमसान लड़ाई। कोई धीर वीर ठहराई॥
कैसहु महा महिप किन होई। जो रन तजिके भागे सोई॥
कतल कैद हो राज विभंगा। कायर नहिं देखे रनरंगा॥
ऋषि मुनि शूर वीरकी करनी। कहलो कहो जाय नहिं वरनी॥

जहँ लगि तन पोषक नर नारी । सो नहिं करनीके अधिकारी ॥
सिन्धुमें जो कोई गोता मारा । सो नहिं राखै भय घरियारा ॥
जबलों सिंधु न डुबकी मारे । तबलों रत्न हाथ नहिं धारे ॥
शर शय्यापर भीष्म विराजे । करि षटमास शयनगति साजे ॥
तन मन कसहि मुनीश्वर ज्ञानी । लहै भक्ति सब सुखकी खानी॥

सत्यकबीर वचन–रेखता

हमनसे मतमिलो यारो हमन खफकी दिवाने हैं ।
खुशीकी राह छोड़ी हैं कठिनमें जा सामने हैं ।
हमन दिन रैन रोते हैं वो रामसे जान खोते हैं ।
सुली की सेज सोते हैं बिरहके ये रकाने हैं ॥
हम न हथियार हैं जानी पिया हरिनामको पानी ।
आखिर सब होवैंगे फानी बलीमें जा समाने हैं ॥
तजी खिदमत वजीरीकी लही लज्जत फकीरीकी ।
चढ़े किस्ती सबूरीकी फुकुरके रकाने हैं ।

चौपाई

पुरुषारथकी ऐसी बातें । कर अवश्य पुरुषारथ ताते ॥
यथा कृषान कृषानी करई । उपजैं अन्न पेट निज भरई ॥
हलवाही अवश्य तेहि करना । भली भांति निजखेत सँवरना ॥
बीज बोय रखवाली कीजै । पशु पंछी करिसो मति कीजै ॥
करि निज श्रम बिनवे प्रभुपाही । भरे खेत वर्षाकरि ताही ॥
जौ ईश्वर वर्षा नहिं करई । वृथा कृषानी ताकी परई ॥
जौ बरषैं बरवारी सुकाला । तो कृषान सो होय निहाला ॥
जौ आलस करिके नर कोई । संशय पै हल जोते नहिं सोई ॥
बीज न बोय न कर रखवारी । बर्षै घन अरु भरे कियारी ॥
ताहि अन्न फल हाथ न आये । मूरख मिथ्या आस लगाये ॥

बिन बोये कहु किनकिन लुनिया । सो जड़ जो यह ज्ञान न गुनिया ॥
ताते पुरुषारथको कीजै । दोऊ लोकमें सुयश लहीजै ॥
सर्वशास्त्र सद्ग्रंथ बिलोका । जान्यौ सर्व धर्मको थोका ॥
तजि असार सार जो ग्राही । सो पंडित मराल मति आही ॥
उत्तम धर्म धरे जो कोई । उत्तम करनी करिहै सोई ॥
नीच धर्म जो कोई गहई । उत्तम करनी सो किमि लहई ॥
साधु पुत्र नहिं करे कुकर्मा । पुत्र असाधु कुकर्महि धर्मा ॥
कर्मयोनिजनिज मातुपिताका । जिव तेहि भली दृष्टिकरि ताका ॥
ऐसहि सब धर्मनके लोगा । करहि कर्म निज गुरु संयोगा ॥
शुद्ध अशुद्ध विचार न हारा । सो हंसा बिरला संसारा ॥
कहूं कहूं बिपरीति देखावै । साधु सुअन असाधु कहावै ॥
कहूं भक्तभा सदन कसाई । पै यह कथा अनोख बताई ॥
धर्म तुच्छ गहि बड़ पद पावै । ऐसेहु कहूं कहूं देखलावै ॥
है परंतु यह अति अज युतरी । रसिकस्वाद कहँ दे कठपुतरी ॥
कोई चंडाल करे द्विज करनी । सो सतसङ्ग केर फल बरनी ॥
उत्तम कुलमें जो जिव होई । मध्यम करनी जाय बिगोई ॥
त्यागहि पक्ष साधु जो ज्ञानी । हो अपक्ष यह मुक्ति निशानी ॥
निजनिज गुरुपद गह सब आछे । यथा भेड़गण पालि न पाछे ॥
निज निज धर्म सत्य सब कहई । ताते परमपन्थ नहिं लहई ॥
जब काहू सच शंका आवै । निज पद पोर गुरू बैठावै ॥
रामचन्द्र मन संशय आई । देह विदेह मुक्ति अर्थाई ॥
मुनि वशिष्ठ निज ज्ञान सुनाये । अपनी ठौर फेर बैठाये ॥

योगवाशिष्ठ द्वितिय मुमुक्षुप्रकरण चतुर्थसर्गः

वशिष्ठ वचन

दोहा—जीवन मुक्ति बिदेहको, तू नहिं जाने हेत ।
सहित असम्यक्ज्ञानके, जान न रघुकुलकेत ॥
स्वसंवेदमें भेद जो, भाषत ज्ञान बिहीन ।
ज्ञानवन्तको भेव नहिं, सम्यकदृग जेहि पीन ॥

चौपाई

सदाकाल ऐसहि चलि आई । निज निजमता मुनीश मिलाई ॥
कोई कह भिन्न जो मारग लेई । गुरु निज पक्षन बिचलन देई ॥
उत्तम करनी जौं नहीं करिये । तो नहिं उत्तम गुरुपद धरिये ॥
शम दमादि करि इन्द्री जीते । आवागौन दुसह दुःख बीते ॥
चारि खानि जिव जौ तन धारी । मानुष प्रभु निज रूप सँवारी ॥
भक्ति हेत यह उत्तम देही । प्रभुहि बिसार जो धरि तन येही ॥
सोई अधर्म आत्महत्यारा । नर तन पाय न काज सुधारा ॥

इति

अथ मनुष्यको नित्यकर्म वर्णन

चौपाई

भोरहि उठि नित कर्म करीजे । करि तन शुद्ध भजन चित दीजै ॥
प्रभु प्रति बिनय बचनते मांगे । महा दीन ह्वै ताके आगे ॥
मोर मनोरथ कर प्रभु पूरा । दीनबन्धु कीजे दुख दूरा ॥
सर्व समय तुहि जग करता । तेरो हुकुम सर्वपर बर्ता ॥
मोर उधार करो प्रभु सोई । विघ्न बिहाय कृपा तौ होई ॥
गुरू अचारजको निज टेरे । सदा सहायक अपनो हेरे ॥
बार बार कर प्रभु प्रति बिनती । यद्यपि सो न करे कछु गिनती ॥
कबहुके दाया प्रभुकी होई । दुःखदरिद्र सब डारे खोई ॥
लाभालाभ एक सम गनिये । सदाकाल प्रभु गुनगन भनिये ॥

जपतप वेद पाठ शुभ कर्मा । गुरू जासु वश भाषे मर्मा ॥
गृही होयके साधू होई । निजु निजु धर्म धरे सब कोई ॥

इति

अथ नरशरीर गुरु अधीन वर्णन—चौपाई

प्रथमै जिव जब गर्भमें आवै । तीन तापते सो अकुलावै ॥
जठरानलकी तीक्षन तापा । महादुःख तहँ जीवहि व्यापा ॥
जठर अग्निसे अस दुख पावा । जैसे तप्त लाल हो तावा ॥
तेहि तावापर जिव जो धरई । तलफि तलफि गरमीते भरई ॥
ऐसे जठर अग्नि तेहि दागे । तहँ जिव बिनय करे प्रभु आगे॥
अबकि बार प्रभु मोहि बचावो । बाहरनिकसि भजन मन लावो॥
दुतिये मल अरु मूत्र मलीना । तामें दूवा दुखिया दीना ।
भोगे दुःख महा दुरगंधा । तृतीये उलटा टांगा बंधा ॥
यहि विधि जीव नर्क तहँ भोगा । तीन ताप व्यापे सौ शोगा ॥
बार बार तहँ करे करारा । त्राहि नाथ कर मोर उबारा ॥
भजन छोड़ि न करो कछु आना। प्रभुकी भावभक्तिमें ध्याना ॥
तहँ जिवके सन्मुख प्रभु ठाढ़ा । दया करे सो दुख लखिगाढ़ा॥
सो करार सुनि हरि हर्षाना । बन्धन काठके बाहर आना ॥
जबहि गर्भसे बाहर काढ़ा । भूला कौन मोहमद बाढा ॥
गर्भमें पोषे पालै आपै । प्रभुकी दया दुःख नहिं व्यापै ॥
पालि पोषि पुनि बाहर धरई । मातु पिताको आश्रित करई ॥
मातु पितहि सौंपे शिशुसेवा । गुप्त हो तबहि परम गुरुदेवा ॥
मातु पिता तबलो तेहि पाला । जबलों नहिं बीते पन बाला ॥
बालापन जबही बितजाई । विद्या पाठ गुरू ढिग जाई ॥
मातुपिता गुरु आदि अवस्था । ताबिन जीव न पावै रस्ता ॥
पुनि गुरु कुटुम्ब जातिगण जोई। कुल मरजाद सिखावै सोई ॥

विद्या पाठक पहँ जब जावै । विद्या सकल ताहिते पावै ॥
विद्यापढ़ि जब भयौ परवीना । धर्म अधर्म मर्म सब चीन्हा ॥
वेद शास्त्रको सबही छाना । तऊ न भक्तिभेद कछु जाना ॥
तब जिव संतकी संगति गहई । ताते ज्ञान लाभ सो लहई ॥
ज्ञानपाथ जब सतगुरु चीन्हा । ताके चरनमें चित दीन्हा ॥
आठ गुरूके नाम बखानो । जिनते जग जिव लाभ लहानो ॥
पहिले गुरू मातु पितु जानी । रज बीरजते देह उपानी ॥
दूजा गुरु है मनको दाई । गर्भमाह जिन युक्ति बनाई ॥
तीजा गुरू नाम जिन धारा । ताहि नाम ले लोग पुकारा ॥
चौथा गुरु जिन विद्या दीना । कुल मर्याद रीति सब चीन्हा ॥
पंचम गुरु जिन दीक्षा दीनो । रामकृष्णको सुमिरन कीनो ॥
छठयें गुरु जिनभ्रम गढ़ तोड़ा । सबसे तोड़ एकसे जोड़ा ॥
सतवां गुरु जिन सत्य लखाया । जहांको था तहँवा बैठाया ॥
एते गुरु हैं जक्त मझारा । जीवहि राह बतावनहारा ॥
अठयें गुरु पारख पद बंदा । जाते कटे सकल यमफंदा ॥
भक्तिहि भक्ति भेद अधिकाई । तासु कथा कछु देहु सुनाई ॥
अक्षर तीन भक्तिमें धारी । ताको ऐसो अर्थ उचारी ॥
प्रथम भकारसो भव बतलावो । आवागमन जो दूर करावो ॥
दुतिये ककार करे कल्याना । तृतिये तो जिवको दे ज्ञाना ॥
भक्ती दोय प्रकार बखानो । विहित अविहित जाको जानो ॥
ऐसे प्रथम बिहित निरतावो । वेद शास्त्र विधि भक्ति कमावो ॥
ताहि विहितमें चार प्रकारा । प्रथम कामना सहित उचारा ॥
जिमिहरिपदध्यायौबृजवनिता । निजमनोरथयुतभक्तिसोभनिता ॥
दुतिये बैरभाव करि ध्यावन । जिमि हरिनाकुस आदिकरावन ॥
तृतिये भयकरि भक्ति गहाई । जस मारीच भक्त रघुराई ॥

चौथ प्रथम भाव मर्यादिक। जैसे नारद अरु सनकादिक ॥
तिनमें द्वैको त्याग बखाना। भय अरु वैर न भक्ति प्रमाना ॥
पुनि दुतिये अविहित कहावै। प्रेम उमंग हृदयमें आवै ॥
आपसे आप प्रेम उमडाना। वेद शास्त्र विधि कछु नहिं जाना॥
उठै उमंग प्रेमकी धारा। आपै भक्ति गहै हरि प्यारा ॥
सबसे श्रेष्ठ भक्ति है येही। मिले धाय निज परम सनेही ॥
याहूमें कहिये द्वै ढंगा। प्रथम प्रमान कीन ज्ञान अंगा ॥
ताके अंगा भक्ती कह सोई। ज्ञान उपाय मुक्तिकर जोई ॥
दुतिये सो मंत्र भाषिये ताही। याके आप ज्ञानमय आही ॥
भक्तिको भाग ज्ञान कहलावे। भक्तिमें सकल ज्ञानगुन पावै ॥
विहित अविहित कीन उचारा। बहुरि भक्ति कह तीन प्रकारा ॥
उत्तम मध्यम प्राकृत ताना। तिनको ऐसे अर्थ बखाना ॥
उत्तम भक्तीको यह लेखा। सर्व मई ईश्वरको देखा ॥
जल तरंग जस भेद न कोई। भक्ती श्रेष्ठ कहावै सोई ॥
शत्रु मित्र जगमें नहिं कोई। आपै आप रमै प्रभु सोई ॥
दुतिये मध्यम भक्ति बन्दता। भगवत भक्त और भगवन्ता ॥
दोनों ते सो प्रीति लगावै। दुरजन देखि न ताको भावै ॥
तृतिये प्रतिमा पूजा ठाना। मूरत को भगवत करिजाना ॥
भगवत भक्तनसे नहिं प्रीति। प्राकृत भक्त केर यह रीति ॥
बहुरि भक्ति कह तीन बिधाना। सात्त्विकराजसतामस जाना ॥
सात्त्विक भक्ति कहे निष्कामा। राजस होय कामना जामा ॥
तामस बैरी विजयके कारन। त्रिविधभक्ति पुनि कीन उचारन॥
मानस बाचक कायक होई। बहुरि चार विधि कहिये सोई ॥
प्रथमजो द्रोपदि आरतनिजहित। दुतिये जिज्ञासू नृप प्रीछित ॥
तृतिये अर्था अर्थी सोई। दुनिया चाहे ध्रुव जस होई ॥

चौथो ज्ञानीको मरजादा। जैसे सनकादिक प्रहलादा ॥
बहुरि तीन विधि भक्ती धरिये। प्रथमहिभक्ति आप जो करिये ॥
दुतिये औरनसे करवावै। पुनि लखिभक्ति करत हरषावै ॥
नौधा भक्ती बहुरि बखानो। श्रौनो कीर्तन सुमिरन जानो ॥
सेवा अरु अर्चा पुनि वंदन। दाससख्यपुनिआत्मनिवेदन ॥
पुनि बारह प्रकारकी भक्ती। प्रथमै संतन संगत युक्ती ॥
पुनि हो भक्तन कृपाके लायक। ऐसे करिये कर्म सुभायक ॥
तृतिये भक्तन चरित जो आही। श्रद्धा अरु निश्चय तेहि माही ॥
चौथे हरिचरित्र सुन काना। पंचम सुनत प्रेम अधिकाना ॥
षष्ठम हरि निजरूप निरताये। जस अद्वैत बाद बतलाये ॥
सप्तम प्रीति माह नित गाढ़े। अष्टम प्रभु प्रकाश उर बाढ़े ॥
नौमें सकल बिकारहि त्यागा। हरिगुन आपमें आवन लागा ॥
सर्वज्ञता होय पुनि दशमें। ग्यारहे सब हरि गुनहो इसमें ॥
बारहे निजु तम हरिकी प्रीति। सकल भर्मभय जीवकी बीति ॥
तीन प्रकार भक्तिको भेवा। प्रथम कीजिये गुरुकी सेवा ॥
तन मन धनसे प्रीति लगावै। गुरुकी सेवा सब सुख पावै ॥
दुतिये साधुन सेवा अहई। ताते जीव परमपद लहई ॥
तृतिये जप तप कीन प्रमाना। निर्गुणसर्गुण भक्ति त्रिधाना ॥
अगुण सगुण जोभक्ति उचारा। स्वसंवेद थापे दोहु बारा ॥
दोहुते पार भक्ति जो गहई। परम पुरुषकी भक्ति सो अहई ॥
ब्रह्मा भक्ती शिवकी भक्ती। रामकृष्ण विष्णू अरु शक्ती ॥
निर्गुण भक्ति योगेश्वर धारी। पुरुप भक्ति इनतेहै न्यारी ॥
जैते भक्ति जक्त में कीना। सबही जानिये गुरु आधीना ॥
प्रथमैं निश्चय गुरु की करई। निश्चयबिन कछु काज न सरई ॥
सबही धर्मकेरि समताई। गुरु निश्चय बिनमुक्ति न पाई ॥

धर्म महम्मदमें बतलाये। निश्चय तरुपर गुरु बैठाये ॥
निश्चय माह गुरुका बासा। बिन गुरु निर्गुण नर्कनिवासा ॥
निश्चयमें जब सद्गुरु बैठे। जिवके हृदय ज्ञान तब पैठे ॥
जिनके हृदये निश्चय नाहीं। तो सबही निगरे नर आही ॥
द्वन्द्वते भया सकल संसारा। द्वन्दहि तासु छोड़ावन हारा ॥
पुरुष नारिको भया जो मेला। ताते जगको पसरा सेला ॥
तैसे जब गुरु शिष्य मिलजाई। सकल भर्म भय जाय नसाई ॥
बिन गुरु जीव राह नहिं पावै। जप तप दान वृथा सब जावै ॥
गुरुके बचन चरन चित दीजै। कबहू ताहि उलंघ न कीजै ॥
करिये गुरुकी सदा बड़ाई। गुरुअस्तुति सब अघ बिनसाई॥
निशदिन ताहि सेवामें रहिये। ताते अधिक न तप कोइ कहिये ॥
तन मग धन गुरु अर्पन करना। गोखुरसो भवसागर तरना ॥
गुरु निरुद्ध करिये जो कर्मा। होय शुद्धपै तजे अधर्मा ॥

सत्यकबीर वचन

साखी-कबीर गुरुबिन माला फेरत, गुरुबिन देते दान।
गुरु बिन दाम हराम है, पूछो वेद पुरान ॥
गर्भयोगेश्वर गुरु बिना, लागा हरिकी सेव।
कहै कबीर बैकुण्ठते, फेरि दियो शुकदेव ॥
कबीर गुरुबिन भर्मा, यौ फिरे ज्यौं रामकोरोझ।
सतगुरुसे परचै भई, पाया हरिको खोज ॥
कबीर जौ निगुरा सुमिरन करे, दिनमें सौ सौ बार।
नगर नायक सत करे, तौ जरे कौनके लार ॥
गुरु आज्ञा निरखत रहै, जैसे मणिहि भुअंग।
कहै कबीर संसारमें, यह गुरु मुखको अंग ॥
गुरुकी आज्ञा आवई, गुरुकी आज्ञा जाय।

कह कबीर सो सन्त है, आवागौ न नशाय ॥
कबीरगुरु मानुषकरि जानते, चरणामृतको पान ।
ते नर नरकहि जायँगे, जन्म जन्म हो श्वान ॥
कबीरते नर अन्ध हैं, गुरुको कहते और ।
हरि रूठे तो ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥
कबीर गुरु है बड़े गोबिन्दते, मनमें देख बिचार ।
हरि सुमिरे सो बार है, गुरु सुमिरे सो पार ॥
कबीर गुरुसे ज्ञान जो लीजिये, शीश दीजिये दान ।
केतिक भोंदू पचिमुये, राखि जीव अभिमान ॥
कबीर तीन लोक नौखंडमें, गुरुते बड़ा न कोय ।
करता करे न करि सकै, गुरू करे सो होय ॥

चौपाई

गुरुके लक्षन चार बखाना । प्रथमहि वेद शास्त्रको ज्ञाना ॥
पुनि हरि भक्त मनो क्रम बानी । तृतीये समदृष्टी कहि गानी ॥
चौथे वेदकी विधि सब कर्मा । यह चौ गुरुगुन जानो मर्मा ॥
मुख्य एक गुन गुरु कहि दीजे । चेलेको हरि सन्मुख कीजे ॥
गूको अर्थ अज्ञ तिमिराना । रू जाते प्रकटे हिय ज्ञाना ॥
दूर करे जो अज्ञ अधेरा । गुरू नाम ताही को टेरा ॥
ऐसहि शिष्य धर्म चौ भनते । गुरुकी सेवा तन मन धनते ॥
दुतिये सेव मैं विषयको त्यागे । तृतीये मन हंकार न जागे ॥
चौथे गुरुके वचन प्रतीती । जो कोइ गहै चलै यम जीती ॥
शिष्यको दोय धर्म सर्वोपर । गुरु सेवा वाती निश्चयकर ॥
जामें दोय धर्म ये बसि हैं । गुरु असीबते सब गुन लसिहैं ॥
आठ गुरु जो कीन प्रमाना । सबहि श्रेष्ठ अति उत्तम जाना ॥
सर्वोपरि दीक्षा गुरु भाषी । जाते भक्ति मुक्ति पद राखी ॥

गुरु गोविंद दोउ एक स्वरूपा । बिनु गुरु परा जीव भ्रमकूपा ॥
बिन गुरु कोई विद्या नहिं आवै । अलख अभेद सो कैसे पावै ॥
बिना निशाने तीर चलावै । अंध समान ठौर नहिं पावै ॥
अच्छे गुरुके ढूँढन मांही । निगुरा रहन भलो कछु नाहीं ॥
जो कोई कर्म धर्म बतलाये । सो गुरु करि लीजे मन भाये ॥
बहुरि जहां उत्तम गुरु पैये । ताके चरननमें चित लैये ॥
जो दृढ हो सांचा गुरु ढूंढा । निश्चय लहै गहै पद गूंढा ॥
गुरु बिन अज्ञ रहै नर कैसे । मानुष ज्यौं पशु देखी जैसे ॥
जो मानुष हो गुरु बीहीना । सो जड़ पशु पंछी ते दीना ॥
पशु पंछी जेते जगमांही । बिन गुरु सबही ज्ञान गहाहीं ॥
निज पितु मातु ढंग सब धरहीं । बिना सिपाये सब कछु करहीं ॥
बिनगुरु करहि कर्म विधि नाना । नरके कबहुँ आव न ध्याना ॥
नर सब जिवते अबला बहूता । गुरुद्वारे पावै बल बूता ॥
शिष येते पशुहू सिपि जाहीं । मनुष सो ज्ञान होय तेहि नाहीं ॥
गुरु द्वारे नर सो गुन पावै । नरते सो ईश्वर ह्वै जावै ॥
यहि विधि नर है गुर आधीना । करिये कर्म कर्म हो छीना ॥
कर्म कीजिये सतगुरुसङ्गा । तब उर उपजे ज्ञान अभंगा ॥

दोहा-गुरुबानी रविकर निकर, कर उर शिष्य प्रकाश ।
ज्ञानदीपके जगमगे, भयौ धर्मको नाश ॥

चौपाई

सर्वोपरि गुरुकेर महातम । बिनगुरु को लखि पावै आतम ॥
गुरुकी सेवा गुरुकी पूजा । गुरुसमान कोइ देव न दूजा ॥
गुरुके चरनन जिन चित दीन्हा । आतम परमातम तिन चीन्हा ॥
गुरुकी कृपा हनै सब शोका । सोई सुखदायक दोहु लोका ॥
रामकृष्ण गुरुके गुन गायौ । ताके चरननमें चित लायौ ॥

संत कबीर गह्यौ गुरु चरना। बारबार ताको जस वरना॥
गुरु करिके जो दोष लगावै। सूकर श्वान केर तन पावै॥
नारद गुरुको दोष लगायौ। चौरासी ताको भरमायौ॥
पूरव कथा यह कागभसुंडर। उठिकेनहिं प्रनाम गुरुको कर॥
नाथ करत शिवमंदिर मांही। गुरू तासु चलि आयौ ताही॥
गुरुको देखि न सो सनमाना। निरखि अनीत शंभु रिसियाना॥
भै अकाशबानी तेहि काला। रे खल तैं गुरुधर्म न पाला॥
धरु जड़ माहस सर्प शरीरा। गुरु अपमान पाव बहुपीरा॥
एक बार पथकी यह बाता। बद्रिकाश्रममहिंमें चलिजाता॥
जाता दीख महि पंथ दुहेला। एक गुरू ताको एक चेला॥
परम प्रीति निजु गुरुसे धरई। चरनामृत बिन भोग न करई॥
लागे तहां पहारको पानी। खेदते दुःखित गुरु कह जानी॥
गुरुकी सेव शिष्य सो त्यागा। गारी देना ताहिको लागा॥
गुरुहि दुखी तजिके चलि गेऊ। बद्रिपतिकी मारग लियऊ॥
तहँते पलटिके सो जब आई। कुष्ठवरन ताके तन छाई॥
बाटहि माह कुष्ठ भरि मारा। यह चरित्र निज नैन निहारा॥
गुरु निरादरको जिमि पापा। तिमि सेवाफल अगिनित थापा॥
कोटिन जप तप करे जो कोई। गुरुविहीन सब निरफल होई॥
मुनि सुकदेवसे को बड़ि ज्ञानी। गर्भते योगमुक्ति जिन ठानी॥
तपबल सो वैकुण्ठ सिधाया। बिन गुरु तहां रहन नहिं पाया॥
गुरुकी निंदा करे जो प्रानी। घोर नरकमें वासा ठानी॥
गुरुते ईर्षा जो जड़ करिहै। सो यमदंड भांति बहु भरिहै॥
गुरुकह बड़ गोविंदते कीन्हा। जाकी कृपा गोविंदहि चीन्हा॥
गुरुसम और न दूजा दाता। सबको मन वेदन विख्याता॥
रिद्धि सिद्धि गति मुक्ति अमाया। बिनगुरु दया न कहुँ कछु पाया॥

गुरुबिन कहो गांठि को खोले । गुरुबिन अंध टटोलत डोले ॥
बारबार कर गुरु गुण गाना । कहा कौन गुरुदेव समाना ॥
धन्य धन्य गुरु देव गोसांई । तार्‍यौ भव गोखुरकी नाई ॥
गुरुगुरु जपिके जागे योगी । विरति विचार प्रपंच वियोगी ॥
जादिनते गुरु शरनमें आये । तादिनते दुःख दोष दुराये ॥
गुरुकी पारन सकल सुखदाई । गुरुप्रसाद अमरावति पाई ॥
जौ गुरु जीवहि नाम न देता । तौ कहु कौन मुक्तिपद चेता ॥
ताते गुरु सब सुखको कारन । तासु चरन रजकर शिर धारन ॥
धन्य धन्य सो शिष्य बड़भागी । तन मन धन गुरुसेवा लागी ॥
तीरथ व्रत कछु काज न नाहीं । गुरुके चरणनमें पति जाही ॥
गुरुसमान तीरथ नहिं औरा । गुरू महात्मविदित सब ठौरा ॥
कोटिन तीर्थ गुरुजीके चरना । संत कबीर जो निजुमुख वरना ॥
गुरुको शीव न मानै जोई । सो जिव निश्चय जाय बिगोई ॥
गुरुसे लगन जासुकी लागे । तन मन धन तृनसम सो त्यागे ॥
अब सुनिये गुरुपारख पदको । सोई परम गुरु है बेहदको ॥
हदके गुरुको जिन भल पूजा । ताहि मिले पारख गुरु दूजा ॥
हद बेहद माह गुरु सोई । बिना ज्ञान लखि परत है दोई ॥

सत्यकबीर बचन-चौपाई

गुरुसम दाता कोइ न भाई । मुक्तिको मारग दियौ बताई ॥
गुरुबिन हृदये ज्ञान न आवै । ज्यौं कस्तूरी मृगा भुलावै ॥
गुरुबिन मिटै न अपनो आपा । धर्मजबड़ी बांधा शापा ॥
गुरुबिन केहरि कूपमें पड़िया । गुरु बिन गजछायासे लड़िया ॥
गुरुबिन श्वान देखि बहु भेषा । मन्दिर एक कांचकी देखा ॥
चहुँदिश दीस आपनी छाया । भूँकत भूँकत प्रान गँवाया ॥

गुरुबिन सुवा नलनिसे बंधा । गुरूबिना कपि पड़ौ जो फंदा ॥
कहे कबीर भर्म संसारा । बिन सदगुरु को उतरे पारा ॥
साखी-भर्म जेवड़ी जगबंधा, फिर जन्मै मरिजाय ।
कहैं कबीर सतगुरु मिलै, तब सतलोकसिधाय ॥
मीन चकार मगल मधु, पशु है तजै न नेह ।
नर है तजै कबीर जो, तिनके मुँह दे खेह ॥

शब्द

नरको नहिं परतीत हमारी ।
झूठी बनिज कियौ झूठे संग पूजी सबैं मिलिहारी ॥
शब्दरशन मिलि पंथ चलायो तिरदेवा अधिकारी ॥
राजा नग्र बड़ो परपंची रैअत रहत उजाड़ी ॥
इतने उत उतते इत राखत यमकी साट सँवारी ॥
ज्यौं कपि डोरि बांधी बाजीगर अपनी खुशी रारी ॥
इहै पेड उतपति पर्लयको विषया सबै बिकारी ।
जैसे श्वान अपावन राजित त्यौं लागी संसारी ॥
कहैं कबीर यह अद्भुत ज्ञाना को मानै बात हमारी ॥
अजहूँ लेव छोडाय कालसे जौंकै सुरति सँभारी ॥
दोहा-गुरुकी महिमा अधिक है, थके विष्णु विधि वाम ॥
जोरि युगलकर पायपरि, कोटि कोटि परनाम ॥

इति नर शरीर गुरूआधीन

अथ शरनागतीको वर्णन-चौपाई

सतगुरु शरण सकल सुखदाई । ताते जिव सत लोक समाई ॥
साचे गुरुकी गहिये शरना । सोई जीव दुसह दुःख हरना ॥
झूठे गुरुसे काज न सरिहै । धोखे जिव यमके सुख परिहै ॥
सूर कि शरण परे जो कोई । सो जिव कबहुँ न जाय बिगोई ॥

कायर क्रूरकी शरणमें लागे। अंतमें छोड़िके ताको भागे ॥
श्वान पूछि गहि जाय न पारा। बूड़ि मरे भवसागर धारा ॥
अंधको राह देखाव कि अंधा। बंधेको खोले कह बंधा ॥
केत उपासक भाषे सोई। भक्ती अरु शरणागत दोई ॥
उभय भांतिसे प्रभुपद पाये। तामें ऐसो भेद बताये ॥
भक्ती ग्राहक ऐसे कहई। युक्ति जतन करि हरिपद गहई ॥
एकजन्म नहिं जन्म अनेका। छूटें नहीं भक्तिको टेका ॥
काहू जन्म मिले हरि अपना। छूटै सकलभय भर्म कलपना ॥
पुनि कह शरनागत जो ग्राही। करनकरावन मोहि कछु नाहीं ॥
शरन हो आपको हरि अर्पनकर। बहुरि नहीं कछु युक्ति यतनकर ॥
शरण हो फेर यतन जौं गहिये। तो शरणागत मिथ्या कहिये ॥
शरन हैं जौं निश्चयमें घाटा। ताकी यमगन रोकै बाटा ॥
जो सतगुरुकी शरणको ताकी। तेहि कछु यतन रहै नहिं बाकी ॥
ताते शरणागत सब परहै। शरण गहै ते जीव उबरहै ॥
शरणागत कह सब गुण आवै। ज्ञानभक्ति तेहिमाह समावै ॥
शरण हो जब यह निश्चय आई। प्रभु मांहि दोनों लोक सहाई ॥
सकल पाप ताको जरि जावै। जो सतगुरुकी शरणमें आवै ॥
शरणागतहो षटगुन गहिये। एमे ताको ब्योरा कहिये ॥
विधि निषेध निजगुरुकी टेवा। दुतिये साधु प्रीत अरु सेवा ॥
तृतिये यह निश्चय उरधारे। मो अध बिसरि नाथ मोहितारे ॥
चौथे यह निश्चय मन माहीं। प्रभु तजि मोर सहायक नाहीं ॥
कैसेहु दुःख सांकरे गूढा। प्रभुतजि और सहाय न ढूंढा ॥
पञ्चम सतगुरु मूर्तिको ध्याना। ताके सन्मुख बिनती ठाना ॥
प्रभु तजि मोर ठेकाना नाहीं। पावन पतित नाम प्रभु आहीं ॥
मो सम पतित न कतहु निहारा। प्रभु सम और न तारनहारा ॥

छठयें आपको प्रभुहिं समर्पैं । ताको कबहुँ काल नहिं दर्पैं ॥
यह षटगुन जो कोई धारा । शरणागत पलमें कर पारा ॥
काहू साधनको नहिं काजा । शरणागती सकल सुखसाजा ॥
कोइ कोइ आचारज हैं ऐसे । शरणागत विधि भाषे जैसे ॥
निशदिन प्रभुको ध्यान लगावै । यक क्षण भरि बिसरै नहिं पावै ॥
टुटै न तार भजन दिन राती । शरणागत कहिये यहि भांती ॥

सत्यकबीर वचन

साखी–कबीर जो जाकी शरन गहै, ताको ताकी लाज ।
उलटि मीन जल चढ़त है, बह्यो जात गजराज ॥

चौपाई

जल अरु मीन कि प्रीति निहारो । तजे प्रान हो जलते न्यारो ॥
ऐसे सतगुरु पद रति राते । निशदिन तासु ध्यानमें माते ॥

कुण्डलिया

रामानन्द कि फौजमें, कबीरके शिरमौर ।
लूला लँगड़ा पांगुला, सबको करि गये ठौर ॥
सबको करि गये ठौर, सुनो कलिके नर नारी ।
गहिये ताकी शरण, हरण भवकी भय भारी ॥
भय भारी हटजाय, उपाय न कलिमें दूजी ।
मेटे यमकी त्रास, आस ताहीते पूजी ॥
शरणगहे सुख होय जिव, बीते सकल कलेश ।
गह्यौ बिभीषण शरण हरि, कीन्हा लंक नरेश ॥
कीन्हो लंकनरेश देशपति, प्रथम सो रहेऊ ।
शरण कबीर सराहि, जाहि खल दल बहु तरेऊ ॥
तऱ्यौ श्वपच चंडाल, डाल अघ गहेऊ न कनिका ।
परमपुरुष पद पाय, यथा काशी की गणिका ॥

शरणागतको धर्म यह तन मन करिये भेट।
गुप्त प्रकट सब अर्पिये पुनि यम गहे न फेट ॥
फेट गहे तब कौन सकल तेरौ नहिं मेरो।
बाहर भीतर पौर ठौर सब तेरौ डेरो ॥
तेरौ डेरो भयो वस्तु तामें सब तेरी।
तूही तहँ रखवाल छुटी सब संशय मेरी ॥

चौपाई

अब कलिमें आयू नर थोरी। को चित योग युक्तिमें जोरी ॥
पुण्यदान कह ध्यान अगाधू। कर्मविहीन गृही अरु साधू ॥
ताते शरनागत सुखदाई। और यतन कलिमें नहिं पाई ॥
कलिके जीव अनन्त अपारा। शरण कबीर होय भवपारा ॥
मूर्ख पुरोहित जस बिन ज्ञाना। ताको दान देत यजमाना ॥
दृढ़ ह्वै सतगुरु शरण गहीजे। सकल भर्मभय ताते छीजे ॥

सत्यकबीर वचन-शब्द

बिरिजमें महारि न खेले सिकार।
चारपांच दश बीश महाभट संग लीने तीनो भरतार।
मीनरूप ह्वै रहै जगतमें डारि बहावै तिरगुन जार ॥
जलरूपी ह्वै रहै संत कोई गहि पकरे गुरुचरण करार।
कहै कबीर सुनो भाई साधो यहिते रहियौ सदा होशियार ॥

इति शरण

अथ सतसंग कुसंगका वर्णन-चौपाई

सर्व शास्त्रको यामें एका। बिनसतसंग न उपजे विवेका ॥
बिनविवेक नहिं उज्वल करनी। जाते मुक्तिपन्थ पग धरनी ॥
सतसंगतकी महिमा भारी। लिखते शेष शारदा हारी ॥
वेद कतेब पार नहिं पावैं। संतनको नित गुन गन गावैं ॥

विधिहरि हर नितजाको ध्यावै । संतको भेद सोऊ नहिं पावै ॥
सतसंगत सब सुखकी खानी । सर्वलाभ ताहीते जानी ॥
जौ तप कीजै वर्ष हजारन । छनसतसंगत कष्ट नेबारन ॥
सत्यस्वरूपी ईश्वर कहिये । ताके भक्तन संगत गहिये ॥
तासु नाम सतसंग कहावै । सो संगतगहि जिव तरिजावै ॥
साधुनकी सेवा मन लावै । तब सतसंगतको नर पावै ॥
सतसंगत कह विविधि प्रकारा । तामें द्वैविधि मुख्य उचारा ॥
हरिभक्तन ढिग बैठन ढंगा । दुतिये वेद पाठ सतसंगा ॥
जोकर भगवतभक्तन सेवा । ताते मिलै परम गुरु देवा ॥
सदशास्त्रन पढ़ि तिनहि बिचारे । कंठ पाठ मुख तिनको धारे ॥
तेहि अनुसार कर्म सब करई । सार असार तहां निरुबरई ॥
सोई शास्त्र है जिव सुखदाई । जाते भक्ती मुक्ती पाई ॥
जाहि शास्त्रपढ़ितन मन भटके । ताको ले पानीमें पटके ॥
जैसे साधन अरु सतसंगा । वर्णन वेदकीन बहु ढंगा ॥
हरिभक्तनकी सङ्गत जोई । तेहि समान कहु तुलै न कोई॥
सतसङ्गत जो ढूँढन चहई । सबही ठौर ताहिको लहई ॥
अपने पापको कारण आही । सतसङ्गत जेहि दरसे नाहीं ॥
अपनी दृष्टि दोष जो धारे । तेहि कारण परदोष निहारे ॥
निजु दृग दोष चंद द्वै दरसै । अंधेको अन्धेर सब सरसै ॥
भक्तीमें दृढ हो न जबलों । सतसंगत करते रह तबलों ॥
मनक्रम साधुकि सेवा गहिये । गाहीते सबही सुख लहिये ॥
साहिब सदा सन्तके साथा । विन सतसङ्ग न आवे हाथा ॥
सन्तजान साहिबकी देही । भक्तन सङ्ग पाइये तेही ॥
भक्तन मुख हरि भोजन करही । सदा सो तिनके सङ्ग विचरही॥
वरन विवेक एक नहिं करिये । साधु जानि सेवा चित धरिहे ॥

साधु सेवके वैरी पांचा । तामें भटकि जाय जिव कांचा ॥
रूप वरन विद्या बल धनमद । ताते जीवन लहै सेवापद ॥
जेते सुख श्रुति संत बखानी । सातो स्वर्ग मुक्ति सुखदानी ॥
ताहूते सुख अधिक जो होई । सत संगत सम तुलै न कोई ॥
सतसंगतसे ईश्वर पावै । ताते अधिक और कह गावै ॥
जहँ ईश्वर तहँ सुरगन छाया । सब दयाल जब प्रभुकी दाया ॥
गुन गन युक्ति मुक्ति जिन पाई । जहँ लगि लखो विभूति भलाई ॥
सो सबही सतसंग प्रतापा । यह पद सब संतन मिलि थापा ॥
अब कुसंगको वर्णन करिये । दुष्ट देखि ततछन परिहरिये ॥
भरुअहि निज उर लेहु लगाई । दुष्ट संग याते दुखदाई ॥
सर्प तो एक प्रानकर घाता । क्रूर संग ले नरक निपाता ॥
दोहूँ लोकमें काज विभंगा । मति मलीन हो किये कुसंगा ॥

इति

अथ मनमायाको वर्णन—कवित्त

यह मन महराज मनहीहै यमराज मन कीने सब काज मन पोषत भरत है । ठाकुरवो ठग मन फैला सब जग मन कालवो दयाल मन तारत तरतहै ॥ मनसो न खोट मन कीने हरि ओट जिव भवमें डुबाय बरमायके छरत है । अकथ अनूप मन ईश्वर स्वरूप मन तिहुं पुर भूप जो उपायके हरत है ॥

चौपाई

यह मन तीन लोकको नाथा । तीन देव इंद्री तेहि साथा ॥
गुन इंद्री याते प्रकटाही । पुनि याहीमें लय ह्वै जाही ॥
यहि मनको कोइ भेद न जाना । सुर नर मुनि परे बंदीखाना ॥
ऊपर मन अरु हेठ है माया । तासुमध्य जग जीवनिकाया ॥

चक्की चलै दल सब जिवको । होहि पिसान न पावै पिवको ॥
कहा बापुरा जीव कडारा । सुरनर मुनिसबछलिछलिमारा ॥

कुंडलिया

चलती चक्की देखिके दिया कबीरा रोय ।
दोपट भीतर आनिके साबित गया न कोय ॥
साबित गया न कोय मिले नाहिं सन्त सनेही ।
कठिन कालको घेर फेर पर समुझावै तेही ॥
समुझाये जौंचेतसो किले सतगुरु अटको ।
फेर न पीसो जाय देख तेहि यमगनसटको ॥

चौपाई

यह मन सकलजक्त बिस्तारा । यहि मनको कछु वारन पारा ॥
मनको रचना सकल जहाना । सात प्रकार सृष्टि जग नाना ॥
मानुष देव नाग कहि देता । किन्नर पशु पच्छी अरु प्रेता ॥
सात जीव हैं सृष्टिके साता । तिनकी अब सुनिये यह बाता ॥

दोहा-स्वप्ना जाग्रत प्रथमपुनि, संकल्प जाग्रित होय ॥
केवल जागृत त्रितयकह, चिर जागृत चौथो होय ॥
पंचम दृढ़ जाग्रित कहै, छठे जागृत सुपनाहि ॥
सतय छोन जागृत कहो, सात सृष्टि यह आहि ॥

चौपाई

स्वपने विषे जो जागृत होई । स्वपना जागृत कहिये सोई ॥
पुनि संकल्प जागृतकह जोई । अजौं नींद नहिं आई होई ॥
तामें जो मनराज फुराना । तेहि मनराजमें जग दरसाना ॥
दृढ़ वासना भई तेहिमाही । पूर्व वासना बिसरी जो जाही ॥
यहि मनराजको रचित जो देही । अधिभूतकता दृढ़ गहयेही ॥

केवल जागृत तृतीये होई । परमातम ततसे फूरोई ॥
सङ्कल्प मात्र जक्त जो गहई । निश्चय आतम पदमें रहई ॥
चौथे चिर जागृत कह लाया । आतमतत्त्वसे जो फुरिआया॥
निश्चय करि जो ताको गहेऊ । जन्मांतरको प्राप्ति जो भयऊ॥
पंचम सुषुति जागृत नाना । दृढ घनभूत जो होय वासना ॥
पाप कर्म करि नो मन लाया । ताते थावर यूनी पाया ॥
षष्ठहि स्वपना जागृत कहिये । जब संतनकी सङ्गत गहिये ॥
पढ़ि सच्छास्त्र भयो जो बोधा । नहिं विचारनिज मनकोशोधा॥
तबसो जागृत स्वपना होई । शुद्धबोध उर थपना होई ॥
सप्तम बोध विषे दृढ़ जोई । तुरिया नाम कहावे सोई ॥
छीन जागृत सो नाम बखाना । परमानंद प्राप्ति जिव जाना ॥
सप्त सृष्टि मन राजा केरो । मन जीते न करे भव फेरो ॥

सत्यकबीर वचन

साखी-कबीर मन गोरख मन गोविंदा, मनही औघड होय ।
जो मनराखे जतनकरि, तो आपे करता होय ॥
कबीरकीटिकर्मपलमें, करे यह मन विषयास्वाद ।
सतगुरु शब्द माना नहीं, जन्म गँवाया बाद ॥
कबीर मन पंछी भया, बहुत चढ़ा आकाश ।
ऊहाँ हांत गिर पड़ा, मन मायाके पास ॥
कबीर-मन जो गया तो जानदे, गहिके राख शरीर ।
उतरी परी कमान है, क्योंकर लागे तीर ॥

छन्द भुजंगप्रयात

महामत्त मातंग निर्द्वन्द गाजा ।
गहे कौन पावे मनी रामराजा ।
लिखो योगथा छन्दया बाघ केरा ।

तपी सूर सिद्धा जपी नर्क गेरा ॥
यही जीवको नित्य बहकावता है ।
यही ज्ञानी ध्यानीको डहकावता है ॥
महाकाल अन्याइया जो कही है ।
यही है यही है यही है यही है ॥

इति मन

अथ वाक्इंद्रीको दमन–चौपाई

शम दमादि यह जिवको कर्मा । गहे सुचाल बहे सब भर्मा ॥
प्रथम वाक इंद्री वश करना । सुधा वचनते जगमन हरना ॥
भलिविधि बूझिविचारिकेबोले । जीनबाक विष अमृत घोले ॥
कटुकवचनविषे कबहुँ न कहिये । जाते श्रोताको उर दहिये ॥
काहूसे बोलो मति करुई । ऐसो ऊंच न ऐसो हरुई ॥
मध्य बोल तोलके आनो । धर्म नीतिमय वचन बखानो ॥
द्वै नर जबहि करे कनफुसकी । कान लगावन तब दिश उसकी ॥
जब द्वै मानुष बात कराही । बात न काटो तिनके माही ॥
वचन पै तर्क करे जो कोई । शुद्ध होय तो मानो सोई ॥
वृथा पक्ष निज बात न करिये । शुद्धको गह अशुद्ध परहरिये ॥
तर्क करत जो आपते ऊंचा । तो तामें ही रहिये नीचा ॥
मिथ्या निन्दा तजो भदेशा । सत्य वचन कर हित उपदेशा ॥
वेदपाठ कर विद्या दाना । पात्र कुपात्र भले पहिचाना ॥
वेद पाठ सच्छास्त्र उचारी । धर्म की विद्या कर्म सुधारी ॥
श्रुति ज्ञान विज्ञान कि पोरी । तासु प्रताप विदित सब ठौरी ॥
कथनी मती महम्मदको है । विद्या सहित साधु किमि सोहै ॥
पूर्णचन्द्र जिमि तारागनमें । विद्वज्जन तिमि तपसिन घनमें ॥
निद्रावश जो पंडित होऊ । मूरखके तपते भल सोऊ ॥

त्रिद्या होय विनय संपन्या । ता पंडितको कहिये धन्या ॥
विद्या पढ़ि अभिमान भुलाना । सो जिव कीनो यमपुर थाना ॥
रसना सब संशयको छेदा । परमपंथको पावै भेदा ॥
रसना द्वार ज्ञान गुन आवै । रसना द्वार अगनि गति पावै ॥

इति रसना

अथ नेत्र और श्रवणका दमन–चौपाई

निज दृग दमन करो यहि लेखे । अन देखनी वस्तु मति देखे ॥
गुप्तस्थान मनुष पशु केरा । अति विशेष नहिं तादिशहेरा ॥
नरपशु परदा देख न जैसो । परे कुबानि जाहिमें ऐसो ॥
काल पाय निज दृष्टि गवावै । सो अवश्य अंधा ह्वै जावै ॥
जो परछिद्र निहारन हारे । दुःखी होहिविन सुमति बिचारे॥
करता कृत निज दृष्टि निहारी । प्रभुहि सराह जीव तप भारी ॥
काम अरु क्रोध कुदृष्टि न हेरे । सहज सुभाव नैन निज फेरे ॥
कामदृष्टि परतियपर डाले । जनु मैथुन करि धर्महि चाले ॥
निज पत्रिका लिखत जब कोई । ताहि न पढ़ो न निज दृगजोई॥
जब तिय संग अनंग बिहारी । तब न गुप्त अस्थान निहारी ॥
जौ तादिश तेहिकालमें देखे । जन्मे पुत्र अंध यहि लेखे ॥
नैन न माह निरंजन थाना । स्वसंवेद इमि करे बखाना ॥
दृगन सपक्षी माह बसेरा । भोग हेत निज नैनन फेरा ॥
भोगे भोग दृगन आसीना । ताको छल नहिं कोई चीन्हा ॥
मन चंचल नैनन चपलाई । मन थिर हो तिनकी थिरताई ॥
नेत्रनमें है यमको बासा । सोइ जीव गल डारे फांसा ॥
जब जिव रोग सोग तन छावै । सबही अंग छीन ह्वै जावै ॥
नैन होहि कबहू नहिं छीना । सदा एकरस देखी पीना ॥
केसहु कृशित रोग मल घेरी । ज्योति अघटु निरंजन केरी ॥

अंधी आंख निरंजन जूझे । बिन देखे मुनि सब कछु बूझे ॥
ताते साधु प्रथम दृग बांधे । पीछे मन इंद्रीको साधे ॥
श्रवणको ऐसे कीजे दमना । अनसुनती बातैं मति सुनना ॥
चुगली चाई निंदा वानी । सुने न श्रवण जीव जो ज्ञानी ॥
महा प्रबल इंद्री हैं येही । जीवहि दुःखसुख व्यापे जेही ॥
गुरूपदेश कि कथा बताया । जीयत कैदी हाड तोडाया ॥
देखन ताहि जुरे नारीनर । एक गर्भिणी रहे तिहि ठाहर ॥
कैदी हाड लगा जब टूटे । निरखि गर्भिणी धीरज छूटे ॥
फिर देखी जब लोग लोगाई । सबही निजु निजु भौन सिधाई ॥
निजघर जाय गर्भिनी बाला । कैदी सुरति कीन कछु काला ॥
पुनि ताको दीन्हो बिसराई । गर्भ कि थित सरनता पाई ॥
जन्यौ पुत्र तिहि औसर नारी । ता शिशुकी यह दशा निहारी ॥
कैदी अस्थि टुटी रह जेतो । बालक हाट टुटा सब तेतो ॥
हस्पताल सो शिशुले गयऊ । बीसवर्ष लो जीअत रहेऊ ॥
टूटा हाड़ बाल सो जीया । औषध ताहि न कछु गुनकीया ॥
मातु दृष्टि बालक दुःख पाया । गर्भहि निजु हाड़ तोड़ाया ॥
ऐसो नैन महाबलवाना । व्यासदृष्टि सुत तीनउपाना ॥
ऐसहि श्रवन प्रबलकहि गानो । एकबारकी कथा बखानो ॥
बंधा परा रहे जिहि ठांई । एक कलावत तहँ चलि आई ॥
गावन और बजावन लागा । सुनते बौरा मन अनुरागा ॥
बौरा रागको भेदी रहई । सुनि सुर ताल प्रीति अतिगहई ॥
परे परे निज अंग हलावे । ज्यौं सुरताल कि गतिसुनि पावे ॥
परे परे निज अंग हलावे । खाट से खोलि दियो पुनि वाको ॥
गूंगे बहिरे चंगे होई । श्रवण नयन हारे ते जोई ॥

प्रान देत मृग मधुरीबानी । ऐसहि प्रबल नासिका जानी ॥
इंद्री सकल अकलको हरही । ले सब जिव भवसागर भरही ॥

इति नेत्र श्रवण दमन

अथ हाथ पांवको दमन–चौपाई

उत्तर कर्म करनते कीजे । काहूको मति दुःख कछु दीजै ॥
पंथमें पाहन कंटक होई । करते दूर डार गह सोई ॥
दान पुन्य हाथन ते करिये । दुःखी दीनको सुखते भरिये ॥
मन्दे कर्मन हाथ उठाये । परधन परतिय दिस न चलाये ॥
चरननको यह कर्म बखाना । हरितीरथ सतसंगत जाना ॥
संतदरस रोगी सोगी पह । यथा योग चलके दुःखदलतह ॥
हरुये हरुये महि पग धरई । देखत चले न जिव कोइ मरई ॥
लाखन जिव पायनतर आवे । दाया करिके तिनहि बचावे ॥

इति हाथ पांवको दमन

अथ श्रेष्ठ पुरुषनकी सभा प्रवेश वर्णन–चौपाई

श्रेष्ठ सभामें जब पग दीजे । तहँ सब कर्म विचारते कीजे ॥
सभामध्य जेहिं औसर पैठे । आज्ञा पाय तहां तब बैठे ॥
बिन बोले नहिं बोलो बोला । बिन पूछे कछु भेद न खोला ॥
बुद्धि विरुद्ध न बोलो बानी । जाकी कोई प्रतीत न आनी ॥
बहुत बड़ाई अस्तुति छोड़ो । निंदा चुगुलीते मुख मोड़ो ॥
कबहुँ न निजगन बुद्धि सराहा । दुःखमतिभाषो सभा उच्छाहा ॥
ऐसो वचन कहो जनि ताही । मनभायक नरनायक नाहीं ॥

इति सभाप्रवेष

अथ मद्यमांस अभक्ष्यवर्णन–चौपाई

मद्य मांस भक्षमलिनबखानी । ताहि न ग्रहन करे नर ज्ञानी ॥
निज निज हृदय विचारो येहा । मल अरु मूत्र कि जेती देहा ॥

सकल अभक्ष धिनावन सोई। चहूँ खानि जलमलते होई ॥
शुद्ध अशुद्ध ताहि पहिचानी। जलकृत शुद्ध अशुद्ध मलानी॥
मलकृत जो जिव जंतु उपाये। हो अज्ञान ताहिके खाये ॥
जलकृत जो फल अन्न अंकूरा। ताते भूखको दुःख कर दूरा ॥
नरपशु जीव जंतु खग नाना। सबको दुःख सुख एक समाना॥
नरपशु खग जो मासके भक्षक। सो नहिं कबहु जीवके रक्षक ॥
जिनके हृदये दाया नाहीं। सोई अधोगति मांह समाहीं ॥
मांसु अहारीके कस दाया। एकखाय बहु मारि गिराया ॥
जो कोई काहूको दुःख देहै। बदला तासु आप शिर लेहै ॥
सुरापान अरु मांसु अहारी। नरकधाम सो अवश्य सिधारी॥

सत्यकबीर वचन

साखी–कबीर–मासुअहारीमानुवा, परतख राक्षस जान।
ताकोसंगत मतिकरो, होयभक्तिमें हान ॥
कबीर–काजी को बेटा मुवा, उरमें सालै पीर।
वह साहिब सबको पिता, भला न मानै वीर ॥
कबीर काटा कूटि जे, करे यह परवण्डको भेस।
निश्चयराम न जानही, कहै कबीर संदेह ॥
कबीर–करता हूँ कहि जातहो, कहा जो मान हमार।
जिसका गलातुकाटिसो, फिर गलाकाटितुमार ॥

चौपाई

मुसलमान आदिक ईसाई। कबहु मदामि अशुचि बताई ॥
ईसाइनमें एक जमाती। अमली नहिं बैठे तिन पाती ॥

अथ टेम्पेरिस सुसैटीको वर्णन–चौपाई

टीटो टलर सुसैटी नाऊ। टेम्पेरिस बहुरी बतलाऊ ॥
दोऊ नाम अँगरेजी भाषा। अमल त्यागियोंकी यह साषा॥

जगमें जेते अमलको नामा । तिनके लेखे सकल हरामा ॥
तिहि मंडली मिलै जो कोई । यह सौगंध करावे सोई ॥
आजते कौल करार हमारा । कोई अमल मुखमें नहिं डारा॥
आप न खाय न औरहि देही । नहिं बेचै न बेचावै येही ॥
कबहुँ न करे तासु व्यौहारा ।अमल निकट नहिं निजु पगधारा॥
जो कोइ ऐसो नियम गहावै । कागज परवाना लिखपावै ॥
सो परवाना निजू ढिग राखे । मूलि कबहुँ कछु अमल न चाखे॥
जिनके मते ग्रंथ बहुतेरा । विषहू ते विष अमल बडेरा ॥
सबही अमलकि निंदा करही । टीटो टलर धर्म आचरही ॥
जो कोइ क्रियामें होय न पक्का । तेहि जमातिसे पावै धक्का ॥
यूरुम नर केते यहि माही । टीटो टलरको धर्म धराही ॥
मुसलमान साधू बहुतेरे । मांसअहार कबहु ना हेरे ॥
धर्म अहिंसा सम नहिं आना । वेदविदित सब संतन जाना ॥

नानकशाह वचन

क्या बकरी क्या भेड है क्या आपन जाया ।
रक्तमासु सब एक है तुके किन फरमाया ॥
नानक घट परचै भई सबही घट पीरा ॥
सकलजक्तके आतमा महबूब कबीरा ॥

इति मद्यमांस अमल सर्वथा अभक्ष

अथ विचार जीवहितकारी वर्णन

कवित्त-बोलत बिचार कर डोलत बिचार कर मुक्तिद्वार पालन विचार सरदार है । बैठत बिचार कर उठत बिचार कर हाट बाट घाटहू बिचार घरबार है ॥ योगहू समाधि माँह ज्ञानहू अगाध माँह साधक अरु सिद्धको बिचार सब सार है । रनबन घन यज्ञदान सुमिरन महँ जहँ तहँ देखिये बिचार जिव तार है ॥

सोरठा-जीवधर्म है येह, बारहि बार बिचार कर।
मैं कह कह मम देह, केहि कारन फंदेपरा ॥

चौपाई

करत बिचार होय उजियारा। तेहि प्रकाश निज दोष निहारा॥
जब आपनो दोष लखि लीजे। तासु नाश हित उद्यम कीजै ॥
स्वसंवेद वद भेद अनूपा। प्रथमै जिवको सत्य स्वरूपा ॥
सो सब प्रथमहि कहे बखानी। जाते जीव भ्रमै चहुँ खानी ॥
अपने फन्दमें आप फँसाई। आपै आप रहा भरमाई ॥

सत्यकबीर वचन-शब्द

अपनेको आपही बिसरो।
जैसे श्वान काँचि मंदिरमें भर्मत भूसि मरो ॥
ज्यौं केहरि वपु निरखिकूप जल प्रतिमा देखि परो।
ऐसेही गज लखि स्फटिकशिलामें दरसन हीते अरो ॥
मरकट मूठी स्वाद न छोड़ै घर घर रटत फिरो।
कहै कबीर नलनिके सुगना कौने तोहि पकरो ॥

दोहा-मनकी वृत्ती पंच है, प्रथम कहे परमान ॥
बीपरजयौ विकल्पकह, निद्रास्मृति मान ॥

चौपाई

मनकी वृती पंच उच्चारा। मनहीको है सकल पसारा ॥
सुन स्वरूप भर्म यह मन है। तेहि कारन सब योग जतन है॥
मन बिनसात जक्त बिनसाना। अंडपिंड दोउ शून्य समाना ॥
जड़ शरीर चेतन चित्त संगा। कर्म फन्द जिव ज्ञान विभंगा ॥
जड़चेतन जन होय मिलौनी। दुःखसुख भोगे सुर नर मौनी ॥
द्वंदते परा जीव को धोखा। कौन भांतिसे पावे मोखा ॥
जिव निरद्वंद दोह्न ते न्यारा। सत्य स्वरूपी अगम अपारा ॥

पांच तत्त्वको जानन वारा । सदा सो इन पांचोंते न्यारा ॥
मन इन्द्री तिरगुनते पारा । आप भूलि गल फन्दा डारा ॥

सोरठा-फन्दपरा जब जीव, अपनो रूपबिसारके ।
ढूंढन लागा पीव, विविधि प्रकारकी यतनकरि ॥

चौपाई

जिमि कपिकण्ठलगी जंजीरा । बँधा रहै बांसके तीरा ॥
कबहुंके बांस ऊपर चढ़ि आवै । कबहुंके हेठ उतरि सो आवै ॥
उतरा चढ़ि न छूटै ताकौ । दृढ़ जंजीर परी गल वाको ॥
तिमि जिव क्रमहीक्रम लहदेही । बिनसतगुरु पद पाव न येही ॥
जब जंजीर गलेकी छूटै । तब जिवरूप आपनो जूटै ॥
वपु विज्ञान शिखरकी चोटी । देही थूल मूल महिं मोटी ॥
मूलते जब चोटी चढ़ि जावै । निज प्रतिबिंबपै ध्यान लगावै ॥
ऊपर हेठ लख मोर स्वरूपा । झांई भेद न जाने भूपा ॥
यही देहु विज्ञान कहावै । झांई निरखि अपनको गावै ॥
जैसे तप्त तीख अंगारा । पर ताहीपर क्रमक्रम छारा ॥
ज्ञान अग्नि जब अन्त बुझाई । थूल शरीर बहुरि जिव पाई ॥
पुनि करि यत्न अग्नि उदगारा । तब विज्ञान देह सो धारा ॥
होय जाय इमि कालहि पाई । आवागौन सूत्र नहिं जाई ॥
जब कपि कंठ कड़ी गुरु छोरे । तब भ्रम धोखा होय न भोरे ॥
बन्धन सो विज्ञान कि देही । आवागौन न छूटै जेही ॥
इहां लगि वेद पुरान बखाना । आगे मरम न कोई जाना ॥
दशों दिशा दश सूरज होई । तब छाया नहिं दरसै कोई ॥
छाया माया होय विनाशा । जीवहि निजुस्वरूप तब भासा॥
दशों दिशा जब रवि स्वरधारा । प्रलय होय तबही संसारा ॥
जहँ संसार तहां नहिं ज्ञाना । जहां ज्ञान तहँ जक्त नसाना ॥

जबलों पारख पद नहिं पावै । तबलों आवागौन समावै ॥
ताते मनहिं विचार करीजै । कच्ची तत्त्वदेह किमि छीजै ॥
पक्की तत्त्व बहुरि जिहि पैये । कह संग्रह कह त्याग करैये ॥
पांचो तत्त्व पचीस प्रकृत्ती । भर्म रूप सबही ये वर्त्ती ॥
जाग्रित स्वप्न सुषुति तुरिया । सो सब भर्म भावकी पुरिया ॥
जैसे जीव त्याग निज भूमी । चार खानिमें रहा सो झूमी ॥
ब्रह्मजीव जग दीसो माया । इत्यादिक बहु नाम धराया ॥
तैसे स्वसंवेद की बानी । धरि बहुरूप जक्त बिहरानी ॥

इति

अथ तत्त्वमसि तीनोंपद मिथ्यावर्णन–चौपाई

जान ज्ञान द्वैभेद बखाना । स्वसंवेद अस करे प्रमाना ॥
मलसंयुक्त ज्ञानको वरना । सर्वजीवमें सो संचरना ॥
ज्ञान अमल विकार कहावै । ज्ञानहि मात्र जीव बतलावै ॥
मेघ झंप जिमि भानु लोपाई । मुख न दीख दरपन लगिकाई ॥
तैसे जान भर्मकी ओटा । सत्य न भासै भासै खोटा ॥
पौन प्रसंग पटल घन वूरी । स्वतह भानु बहुडिस रह पूरी ॥
भानुउदय नहिं दरसै तारा । ज्ञानउदय नहिं यह संसारा ॥
अमल अखंड उदय दिनकरके । रहे न भर्मत तच्छन सरके ॥
जानति माया झंपन जबही । ज्ञान नाम कहिये सो तबही ॥
ज्ञानहिं मात्र जीवको कहई । विना ज्ञान सब मृत्तक अहई ॥
जक्त मांह जेते वैपारी । जीव जमावै पार पसारी ॥
बिना जमावै पार न होई । खर्च कहांते करिहै कोई ॥

सत्यकबीर वचन

साखी–कहै कबीर विचार, यह निर्णय परमान ।
जीव जमा जाने बिना, सबै खरचमें जान ॥

चौपाई

जो दीसै सबही बिनसाई। जो बिनसै सो जिव न कहाई ॥
जीव सोई जीवै तिहुकाला। जड़ चेतन ते सदा निराला ॥
आप मानि बंधनमें आया। भ्रमकरि तत्त्वमसी ठहराया ॥
तत्त्वमसी तिहुँपद है जोई। आवागौन मूल है सोई ॥
ततपद ईश्वर त्वं जिवरासी। असि पदक है ब्रह्म अविनासी॥
ततपद ज्ञान है त्वं अज्ञाना। असि पद वेद ब्रह्म अज्ञाना ॥
वस ब्रह्मांड ब्रह्मसो ईसा। जिव अभिमानी पिंडमें दीसा ॥
असि पद जो दोनोंमें सनई। यमअनंद कछु कहत न बनई ॥
ज्ञानी अज्ञानी विज्ञानी। ततसागर त्वं सर असि पानी ॥
नामरूप मिथ्या है दोई। आत्मा एक जल सबमें सोई ॥
मानन्दी यह तीन प्रकारा। मानि मानि निज बन्धन डारा॥
यही तीन है जिवको फांसा। षटदेहींमें कीनो बासा ॥
दोविधि ज्ञान द्वैविधि अज्ञाना। दोय भांति विज्ञान बखाना ॥
यक विशेष अपरोक्ष बतावो। दुतियोको परोक्ष कहि गावो ॥
निर उपाधि अपरोक्ष बखाना। सहित उपाधि परोक्ष प्रमाना ॥

इति

अथ त्वंपद द्वैभांतिको अज्ञानवर्णन-चौपाई

जो विशेष अपरोक्ष कहावै। विषयी जीवनके मन भावै ॥
विषय आसक्त जीव जब रहई। जाति पांति कुलकानि न गहई॥
भोग मदामिष परतिय संगा। विषयिन सङ्ग अनंग तरंगा ॥
वेद शास्त्र मानै नहिं कोई। गति अपरोक्ष कहावे सोई ॥
सो अपरोक्ष दोय विधि वरना। परइच्छा निज इच्छा चरना ॥
परइच्छा जो हो अज्ञाना। सो समान अधिकरण बखाना॥
निज इच्छा अज्ञान गहीजै। सो विशेष अधिकरण कहीजै ॥

गुरुजनकी कछु कानि न माने । वेद शास्त्रकी निन्दा ठाने ॥
गुरु सतगुरुको आदर नाहीं । ईश्वर देव कौन कह आहीं ॥
वामपंथ इच्छा आचरई । बाद अन्यथा सबसे करई ॥
जो कोइ ताको ज्ञान सुनावै । ताते उठिके झगरन धावै ॥
रस शृङ्गार गीत भल गावै । विषय सराह स्वाद मन लावै ॥
निंदै ज्ञान भक्ति सतसंगा । सदाकाल विषयन रतिरंगा ॥
मृगनैनी तजि भे बैरागी । इन समान नहिं कोउ दुर्भागी ॥
साधु संग करि नर बौराना । ताते विषय स्वाद नहिं जाना ॥
कर्महीन दारिद्री येहा । हम ज्ञानी सब गुनको गेहा ॥
जो कछु है सो है यह देही । इन्द्री भोग देइ भल हेही ॥
मुये पिछार मुक्ति सब पाई । और सबहि जग भ्रम उपजाई ॥
जैसे वृक्षते पत्ता टुटता । फेर न सो तरुवरमें जुटता ॥
जैसे मुये मुक्त सब होई । और मुक्ति कतहूँ नहिं कोई ॥
यह बिसे अपरोक्ष अज्ञाना । विषयी जीवनके मनमाना ॥
अब दुतियेको वरनन कीजे । तेहि परोक्ष अज्ञान कहीजे ॥
सो परोक्ष अज्ञान है जोई । समान अधिकरन कहावे सोई ॥
जो समान अधिकरन कहावे । कर ताको दूजा बतलावे ॥
यंत्र मंत्र अरु देवी देवा । विविधि प्रकार करे सो सेवा ॥
तीरथ व्रत अस मूरत पूजा । कर्म करहि ईश्वर लखि दूजा ॥
वेदकि विधि सब करे अचारा । क्रम उपाछाको व्यौहारा ॥
कर्मोमाह दोय विधि जाना । यक विशेष कह एक समाना ॥
सुन धन धान्यलाभ जग हेता । पूजा सेवामें चित देता ॥
निज मनोर्थहिन जो मन लावै । सो विशेष अधिकरण कहावै ॥
कर्ता हेत कर्म जो करिये । मुक्ति वासना चितमें धरिये ॥
शम दमादि अरु योग समाधू । तन मन बहुविधि साधे साधू ॥

यही कर्म भक्तन मन भावै । कोइ बड़भागी तेहि मन लावै ॥
नाम समान तासुको धरते । मुक्तिवासना जिवमें बरते ॥
दोय प्रकार कहे अज्ञाना । अकरम करम करै विधिनाना ॥
अकरम सकल अकरमी केरा । करमिष्टी कर कर्म घनेरा ॥
परइच्छा निज इच्छा होई । समान विशेष कहावै सोई ॥
याहीको त्वंपद कर जानी । तामें बँधे सकल अज्ञानी ॥
द्वै प्रकार अज्ञान उचारी । तामें फँसे सकल संसारी ॥

इति त्वंपद अज्ञान

अथ ततपद द्वैविधिको ज्ञानवर्णन-चौपाई

ततपद द्वै विधि कह सविवेका । एक विशेष समान है एका ॥
सहित उपाधि विशेष बखाना । निरउपाधि है मुक्त समाना ॥
ज्ञान विशेष ते ईश बखानी । ज्ञान समान कहावै ज्ञानी ॥
निज जनकी उपाधि सब जाना । पर उपाधि सबही पहिचाना ॥
तीन अवस्था दुःख सुखसारा । इन्द्री अरु इन्द्रिन व्यौहारा ॥
सब मिथ्यामृगजलवत जाना । सब असत्य मैं सत्य सुजाना ॥
तीन देह माया भ्रम माना । बारम्बार फुरै अज्ञाना ॥
सोई ज्ञान परोक्ष प्रमाना । ताहूमें द्वै भेद बखाना ॥
सर्व समर्थ गहे सब सत्ता । ऋद्धि सिद्धि युत जगमें वर्त्ता ॥
जो षटगुन ईश्वर जग होई । सोई सिद्धि ईश कह सोई ॥
होनी अनहोनी करि डारा । अब समान करिये निरधारा ॥
निरउपाधि कहियत है ताही । ऋद्धि सिद्धि कछु मानत नाहीं ॥
सकल उपाधि नास्ति करिभाषी । मैं आस्तीक सर्वको साखी ॥
त्रिगुणातीत मोर व्यौहारा । विधि हरिहर नहिं पावत पारा ॥
ऐसो ज्ञान जाहिके तीरा । सोई ज्ञानी ज्ञान गंभीरा ॥
यह परोक्ष द्वैविधि चितधरिये । अब अपरोक्षकि निर्णय करिये ॥

तीन काल कोई नहिं भासा। त्रिपुटी सकलको होय बिनासा॥
ज्ञानाज्ञान गेय नहिं कोई। ध्याता ध्यान ध्येय ना होई॥
आपन भाव रहै तिहुँ काला। द्वैत उपाधि नास्ति जंजाला॥
यही ज्ञान अपरोक्ष कहावा। सो ज्ञानी शिवरूप बतावा॥
योग समाधिसे जो मन मारे। मध्यम पक्ष सो वेद उचारे॥
तामें कसर वेद निर्धारा। परो अविद्याको अंधियारा॥

इति ततपद

अथ असिपद विज्ञान द्वैविधि वर्णन चौपाई

जानि बूझि जड़ वृती जो धारा। जस उनमत्त महा मतवारा॥
यहिविधि सहजदसा जब गहई। एक अनेकन भ्रम कछु रहई॥
महदानन्द मगन मन होई। याहूमें प्रकार है दोई॥
जहँ विज्ञान दशा रह आई। सो विज्ञान हंस कहलाई॥
कहवे मात्र बानीको ज्ञाना। सो मिथ्या विज्ञान बखाना॥
दुतिये सो विज्ञान कहाई। जहां तहां आपै रह छाई॥
द्वैतभाग कहूं नहिं रहई। कारन कारज आपै रहई॥
आपै बोले आप बोलावै। आपै डोलै आप डोलावै॥
करे करावै आपै आपू। द्वैतभाव कतहूं नहिं थापू॥

इति

अथ स्वसंवेदमते चतुर्थपारखपदवर्णन-चौपाई

यहि विधि तीन भूमिका भाषी। चौथि भूमि पारखपद राखी॥
तीन भूमिका है भ्रम भासा। चौथे परख काटे जिव फांसा॥
तत्त्वमसीको ज्ञान जो गहता। तावमसीसे न्यारा रहता॥
जैसे गूँगेने गुड़ खाया। बाक बिना कह स्वाद बताया॥
तत्त्वमसाको ज्ञान जो धारी। जानि बूझि सो भयौ सुखारी॥
गूंगा गुड़को स्वाद जो गहई। सो तो गुड़से न्यारा रहई॥

स्वादी स्वादसे भिन्न सदाई । क्या गूँगा गुड़ही ह्वै जाई ॥
नयन समस्त जक्तको देखै । अपनो रूप न सो पै पेखै ॥
मुखको भास परे दरपनमें । पै मुख नहीं बिचारो मनमें ॥
तत्त्वमसीगह ज्ञान जो कोई । अपनो भास आपना होई ॥
झाँई निरखी भूलि सो जाई । ताहीको आपा बतलाई ॥
जाते आवा गौनमें रहई । पारख बिना न सो पद लहई ॥
सब ऊपर गुरु पारख पद है । यहै जीवके ज्ञानको हद है ॥
षट प्रकारकी भूमि कहावै । पारख गुरू सकल परखावै ॥
छिप्रा प्रथम गतागत दोई । तृतीये सो लेष्टा कह सोई ॥
चौथी भूमि शूलनी गाई । पंचम भूमि आप भौराई ॥
छठई सत्य भूमि कहि दीजे । सप्तम पारख भूमि भनीजे ॥
पारख पर कोइ पद नहिं जाना । ताकी कृपाते भय भ्रम भाना ॥
पारख बिन जीव यह भूला । ताते सहै त्रिविध तन शूला ॥

सत्यकबीर वचन—शब्द

यह जग पारख बिना भूलाना ।
निर्गुण सर्गुण द्वै कर थापै अजपा धरि धरि ध्याना ॥
द्वैतहि ब्रह्म सकल घट व्यापै निर्गुणमें लपटाना ।
आवै जाय उपै फिर बिनशै जरि मरि कहा समाना ॥
सहस पाखुरी कमल विराजै मन मधुकर लपटाना ।
जलके सूखे कमल कुमिलाना तब कहु कहा ठेकाना ॥
छवो चक्र व्रत चार चतुर्दश वेद मते अरुझाना ।
बंक नालकी डोरी खैंचे योगिन युक्ति बखाना ॥
घटमें करता लोग बोलत है पांचों तत्त्व बीलाना ।
सर्गुन विनशी निर्गुन गुन रहि तमगुन बिन कहाँ समाना ॥

करहु विचार सकल मिलि ऐसो भेष बिबिधि बिधि बाना ।
कहै कबीर कोइ गुरुगम पावै पहुँचे ठौर ठिकाना ॥

इति पारखभूमि

सोरठा–ज्ञानको मूल बिचार, बिन बिचारको ज्ञान गह ।
हृदय घोर अँधियार, सार असार न परखकर ॥
ताते बारहि बार, मनमें भूले विचारकर ।
कोहं को संसार, कौनि भांति कहते भया ॥
करता कारण कौन, यह समूह जो दृश्य है ।
परखी लीजिये तौन, निज विचार द्वारे सकल ॥
देह सदा जडरूप, चित्त फुरित चैतन्य है ।
कर्मक्रिया भ्रमकूप, जड़ चैतनते मैं अलग ॥

चौपाई

अस बिचार आवै हिय जनही । तब गह सार भर्म भय भनही ॥
जहँ लगि जगमें कथा कहानी । सकल जीवकी बात बखानी ॥
सर्वज्ञो अलपज्ञ समाजा । जीवहि रंक जीव ही राजा ॥
जीवहि गिरही जीव भिखारी । जीवहि पुरुष जीवही नारी ॥
जीव ब्रह्म माया जगदीशा । जीवहि सूर लग्न रजनीशा ॥
जीवहि कूर सुगम सुरबाना । जीवहि जल थलमें बिहराना ॥
जीवहि काल युवा अरु बूढ़ा । जीवहि ज्ञानी जीवहि मूढ़ा ॥
जीव समष्टि व्यष्टि कहलावै । जीवहि पोषै सोष उपावै ॥
जीवते इतर कतहुँ कछु नाहीं । उर्ध मध्य अध जीवहि आहीं ॥
जीवको सबही खेल विहारी । ताकी दशा अवस्था न्यारी ॥
ब्रह्म कहूँ बिन जीव न होई । जीव बिना जिव जिये न कोइ ॥
जोपैं ब्रह्म जीव बिन होता । कैसे जीव बीज सो बोता ॥
जीवकर्म निर्जीव न करई । जीव बिना जिवकाज न सरई ॥

जीवभूमिका पर सब ठाढ़े। कहूँ तुच्छ कहुं गुणगण बाढ़े ॥
कर्म किये सर्वज्ञ हो सोई। जैसे मूरख पंडित होई ॥
सम्पति विपतिमें जिव एक सारा। भिन्न भिन्न पदवी सो धारा ॥

दोहा-अल्पज्ञता जो जीवकी, सर्वज्ञता जो ईश।
दूर दोहूको कीजिये, जीवहि विश्वा बीश ॥

चौपाई

चारों खानि जीव यक रासी। सबको लगी कर्मकी फांसी ॥
नरतन यही ज्ञान अधिकारी। ताते जीव भ्रम तिमिर बिड़ारी॥
कञ्चनको भूषण बहु करही। न्यारो न्यारो नाम सो धरही ॥
भूषणदशा स्वर्ण जब लहिये। तब क्या कंचन नाम न कहिये॥
धातु रूपहू कहिये कंचन। भूषणहू पुनि सोई बिरंचन ॥
कंचन आहि सत्य यक ताते। जो कछु चाहे रचिये बातें ॥
ऐसे जीव धातुसे सब है। माया ब्रह्मादिक बहु ढब है ॥
सांचो जीव जमा यक अहई। और खर्च बहु बानी बहई ॥
सूक्षम थूल जीवकी करनी। अज्ञ तज्ञ कछु भिन्न न वरनी ॥
पारख गुरु कोइ ढूँढ़न जावे। जीवते इतर ताहि नहिं पावे ॥
पारख सदा जीवके पाहीं। प्रकट होत भ्रम तम बिनसाहीं ॥
भल विचार करिहै जे प्रानी। सारासार सोई पहिचानी ॥
जेते हंस पारख पदधारा। पारख पाय न पुनि संसारा ॥
अलख कि गति कहूँ लखी न जाई। पारख कृपाते सो दरसाई ॥

सत्यकबीर वचन-शब्द

साधो सतगुरु अलख लखाया, जाते आप आप दरसाया ॥
बीज मध्य ज्यौं तरुवर दरसै, वृक्ष मध्य ज्यों छाया।
आतममें परमातम दरसे, परमातममें माया ॥

ज्यौं नाभीमें शून्य देखिये, शून्य अण्ड आकारा।
निहअक्षरसे अक्षर ऐसा, क्षर अक्षर विस्तारा॥
ज्यौंरविमध्ये किरन देखिये, किरनि ज्योति परकाशा।
पारब्रह्मसे जीव ब्रह्म है, जीवब्रह्मसे श्वासा॥
श्वासामध्ये शब्द देखिये, शब्द अर्थके माहीं।
पारब्रह्मसे जीव ब्रह्म है, न्यारा है वह साईं॥
आपै बीज वृक्ष अंकूरी, आप पुहप फल छाया।
सूर्य किरन परकाश आप है, आप ब्रह्म जिवमाया॥
आतममें परमातम दरसै, परमातममें झांई।
झांईमें यक झांई दरसै, लखो कबीरा सांई॥
छन्द-यह ज्ञान अगम अगाध कोई साधके मन भाय है।
सो परख पारख परम गुरुकह परख पद परखाय है॥
परखाय है सो परखपद जब दयानिधि हर्षाय है।
सत्यनामके परताप पर्बल ताप त्रिविध नसाय है॥

इति

अथ पंचकोष मिथ्यावर्णन-चौपाई

आप भूलि निजु फांसा लीना। पंचकोषमें बासा लीना॥
पंचकोष यहि विधि पहिचानी। प्रथम अन्नमय कोष बखानी॥
दुतिय प्राणमय कोष प्रमानो। तृतिय मनोमयकोषको जानो॥
पुनि विज्ञान मय कोष अहई। फिरि अनंदमय पंचम कहई॥
प्रथम अन्नमय कोष बखानो। अन्न भोगते ताथित मानो॥
पंचतत्त्व परकृत्त पचीसा। तीनो गुन करि जिवतन दीसा॥
जैसे घटको भाजन ठाटी। उपादान कारन है माटी॥
तासु निमित्त कारन कोम्हारा। समवाय कारन चक्र बिचारा॥

तिमि तम उपादान कारनतन । राजसतामसनिमित्तको कारन ॥
सातकसो समवाय बखानी । तीनों गुन करि देह उपानी ॥
सो तन कहे अन्नमय कोषा । बंधन ताहि चार है चोखा ॥
बसियौ रसियौ ग्रसियौ कसियौ । ये चारों बंधन तन लसियौ ॥
प्रथमैं बसियो कहो बखानी । देहोहं यह तन मम मानी ॥
देहको सो आपा करि जानी । बंधन माह परा अज्ञानी ॥
दुतियौ रसियौ भेद उचारी । जेहि वर्णाश्रम जिव तनधारी ॥
सोइ वर्णाश्रम कर्म जो करिये । तेहिते रसियौ बंधन परिये ॥
तृतिये ग्रसियो कहिये ताही । निजु वर्णाश्रम जीव सराही ॥
तुच्छ इतर वर्णाश्रम देखे । बंधन ग्रसियो गहे विशेषे ॥
चौथे कसियौकरे अकाजा । कुलकी लाज लोककी लाजा ॥
वेद अरु देव लाजामें फंसा । ताते परा जीवको संसा ॥
इन चारों बंधनको काटो । तब जिवकी भ्रम संशय फाटो ॥
कुल अरु लोक वेद सुर लाजा । अस जब भाषे कुटुम समाजा ॥
हमरे कुलको यहि पथ डगरा । कुलकरनी तजि तू जस बिगरा ॥
तब जिव दुरि कुलधर्म सभारी । भिन्नपंथ नहि सो पगधारी ॥
जो कोइ यह लज्जा काटे । लोकलाज पुनि ताको डाटे ॥
लोग जो ऐसी बचन सुनायौ । बिगर्‍यौ श्रेष्ठ पुरुषको जायौ ॥
लोकलाज तब जिव नहिं छोड़े । अपने कर्म ते सो मुख मोड़े ॥
लोक लाज जौं तोरके जाई । वेद लाज तेहि लेत फँसाई ॥
वेद लाज सो बंधन अहई । जब संसारी अस मिलि कहई ॥
काहू वेद शास्त्र परमाना । जो तू कर्म करे मनमाना ॥
वेदहु लाज लंघि जब जावै । देव लाज पुनि तोहि दबावै ॥
देव लाज कह कौन उलंघा । करे देव करनीमें भंगा ॥
इन्द्री द्वारे देवन थाना । विषय भोग तिनके तन माना ॥

आवत देख जो बिषयबयारी । इन्द्री पटल सो देहि उघारी ॥
विषयानन्द जीव जब होई । तब शुभ करनी करे न कोई ॥
जब चहुलाज लंघि जिव जावै । बड़भागी कोइ प्रभु पद पावै ॥
अन्नमय यह कोष बखाना । जामें जक्त जीव गल ताना ॥
प्राणमयी कोष याके आगे । विविधिप्रकार पौन संग लागे ॥
प्राण अपान समान उदाना । व्यानो नाग कूर्म कहि गाना ॥
किर्कल देवोदत्त धनंजय । ये सब पौन हैं कोष प्राणमय ॥
जेहि औसर जिव ऐसो कहई । प्राण हमारो तीक्षन बहई ॥
प्राण पौनको स्वतह सुभाऊ । आपासो आरोप कराऊ ॥
गुदा अपान प्रवेश कराया । पवन सुभावन जीव सुभाया ॥
हृदय समान उदान सिरोई । व्यान अन्नपाचक है सोई ॥
नाग डकार कूर्म दृग खोले । किर्कल छीक स्वतह सो बोले ॥
देवदत्त जमुहाई पूजे । मृतक शरीर धनंजय सूजे ॥
इतने इतर पौन बहुवादी । अंगफर्कन अफरन हिचक्यादी ॥
पौन कर्म सब मानै आपा । कोष प्रानमय बंधन थापा ॥
कोष मनोमय तासु अवांतर । पुनि हंकार कहे ताते पर ॥
शुभऔरअशुभकर्म जो कछु कर । पुन्य पाप व्यौहारादिक नर ॥
सो सब मन इन्द्रीके करतब । कोषविज्ञानमयी कहिये अब ॥
पंच ज्ञान इंद्री छठये बुधि । तासु अवांतरचित्त सहित सुधि ॥
परमारथ सब उत्तम करनी । सो सुभाव सब इनको बरनी ॥
जिवसो कर्म आपनो धरई । कोष विज्ञानमय बंधन करई ॥
पुनि अनंदमय कोष पर तेही । बुद्धिको ऐसो ज्ञान भयो जेही ॥
हौमैं करि जिव करे बखाना । आपको बड़ अनंद हम जाना ॥
सो अनंद बंधन जिव केरा । कोष अनंदमयी यह टेरा ॥
पांचो कोष अवस्था पांचो । जागृतरूप अनन्तमय बांचो ॥

प्राण मनो विज्ञान जो तीनी । स्वप्न स्वरूप तिन्है कहि दीनी॥
पुनि अनंदमय कोष जो आही । रूप सुषुप्ती कहिये ताही ॥
जागृत रजगुन रूप कहीजै । सतगुन रूप स्वप्न कहिदीजै ॥
तमगुन रूप सुषुप्ति कहावै । देहमंत्री गुन सुभाव बतावै ॥
पुण्यदया वांछा रजगुनकह । पुन्य पिछार विषाद तमो यह ॥
वांछा रहित सतोगुन जानी । त्रिगुन कर्म नानाविधि मानी ॥
जिव अज्ञानते आपको कहई । पुण्यपाप सब मेरो अहई ॥
ज्ञानी गुनन सुभाव सो जाने । अज्ञानी अपनो करि माने ॥
यहि बिधि जेते तनके कर्मा । सो सब मन इंद्रिके धर्मा ॥
पांचो तत्त्व त्रिगुनते भयऊ । गुन आज्ञा शक्तिसे कहेऊ ॥
चितसे अज्ञान शक्ती होई । मन अरू चित्त भेद नहिं कोई ॥
सर्व कर्म जो जगके माहीं । मनहीं केर पसारा आहीं ॥
मन माया तिरगुन व्यौहारा । जक्तमाह भ्रम जाल पसारा ॥

अथ योग और भोग दोनों मिथ्या वर्णन

दोहा—षटदल चक्रको भेदके, योगी पौन चढ़ाय ।
दल सहस्रके कमलमें, निर्विकल्प हो जाय ॥
हो विदेह पद अमर लह, विद्यामें ठहराय ।
भे निरद्वन्द न कल्पना, आपमें आप समाय ॥

चौपाई

जिमि योगी तिमि भोगी देखे । कमल भेद दोनों यक लेखे ॥
द्वन्ददाँब दोनोंको खेला । इत नरनारी उत गुर चेला ॥
योगी उरध पौन चढ़ावै । भोगी अधपानी ले आवै ॥
नादके बल योगी अविनाशी । विंदके चल भोगी सुखराशी ॥
नारिपुरुष जब भा संयोगा । दोनों मिले भोग सुख भोगा ॥
माथेसे जब माथ जुरेऊ । सिखर कमलते विंद उतरेऊ ॥

नेत्रसे नेत्र जुटे जिहि बारा । द्वैदल कमल भेदि चलु पारा ॥
मुखसे मुख जेहि औसर चूमा । तबही बिंद अधो दिस घूमा ॥
तब षोडश दल कमल बधाना । द्वादशदलपर पुनि ठहराना ॥
अनहद चक्रते बिंद उतारा । मणिपूरकपर आसन धारा ॥
मणिपूरकते हेटको हेरा । स्वाधिष्ठान चक्र कर डेरा ॥
नारिपुरुष मिलि द्वन्द मचाया । स्वाधिष्ठान उतरि जल आया ॥
टिका अधारचक्र जब पानी । सह विकल्प भोगी तब जाना ॥
ज्ञान पुत्र योगा जब पायौ । अमर भयौ फिर गर्भ न आयौ ॥
योगी हृदये जबलों ज्ञाना । तबलों ताको अमर बखाना ॥
ज्ञान लोप होवे जेहि काला । तब योगीको हो जंजाला ॥
ज्ञानदृष्टि करि योगी जाना । मैंहंमि जगमें पसराना ॥
अज्ञ पुत्र तिमि योगी जाया । वंशवृद्धि जगमें फैलाया ॥
भोगी अमर भयौ तेहि बारा । तासु वंश जगमाह पसारा ॥
जबलों वंश जक्तमें ताका । भोगा अमर भयौ परिपाका ॥
तासु वंश जब हो संसारा । भोगी मृतक होय तेहि बारा ॥
आपै आप सकल जगमाही । अज्ञदृष्टि करि जा तन नाहीं ॥
योगी विद्या द्वारे जाना । भोगी अविद्याते अज्ञाना ॥
योग भोग दोनों हैं झूठे । संत सुजान दोहूते रूठे ॥
योगअरु भोग ब्रह्म जिव माया । नादबिंद जो कछु उपजाया ॥
सो सब भर्म एक नहिं सांचा । सांचे सतगुरुको यह वाचा ॥
भर्मै नाद अरु भर्मै बिंदू । भर्महि तुर्क अरु भर्मै हिंदू ॥
भर्म निमाज भर्महा रोजा । भर्महि ते सब ईश्वर खोजा ॥
भर्महि देऊल भर्महि देवा । भर्महि पूजा भर्महि सेवा ॥
भर्महि धरती भर्म अकाशा । भर्महिको यह सकल प्रकाशा ॥
भर्मको रचित सकल संसारा । टूटै भर्म होय भव पारा ॥

इति योग और भोग मिथ्या

अथ स्वसंवेदमते अष्टांगयोगवर्णन सत्यकबीरवचन अष्टांगयोगकी रमैनी

अविगति लीला अगम अपारा। धरती धरचौ सत्य औतारा ॥
अविगति लीला अगम अलेखा। अबरन बरन रूप नहिरेखा ॥
जाकी गति सुर मुनि नहिं पाई। अविगतिकीगतिवरनि न जाई ॥
शेष सहस्रमुख निशिदिन गावे। अस्तुति करति पार नहिं पावे ॥
वेद जो कोट सहस्र पुन गावे। अविगति गतिबरनी नहिं जावे॥

साखी–अविगतिकी बेगति है, मन बुध चितते दूर।
आपमेटि सतगुरु मिलै, पावै दरस हजूर ॥

रमैनी

योगी बहुत योग जो करई। कृपा योगते नहिं निस्तरई ॥
फिर फिर आवै फिर-फिर जाई। कर्महि कर्म बहुत अरु झाई ॥
है निष्कर्म नाम जो ध्यावै। योनी संकट बहुरि न आवै ॥
क्रमही क्रम बंधावहु भारा। क्रमही क्रम अटका संसारा ॥
देह कर्म जो लीन उठाई। मनको कर्म छुटै नहिं भाई ॥
जब लगिमनकी कर्म न खोवै। तबलगि मननिर्मल नहिं होवै ॥
जब मनकी किरिया मिटि जाई। तब हरि मिलै सहजमें आई ॥

साखी–तन किरियाको छोड़िके, मन किरिया रुचिराख ॥
कर्म क्रिया अभिमान तजि, सत्यनाम निजु भाष ॥

रमैनी

तनकी करनी देहु बहाई। मनकी करनी सत्य मिलाई ॥
मनकी किरिया सत्य जो कोई। ताहि समान और नहिं कोई ॥
सांख्य योग करनी है सारा। जेहिते उतरे भव जल पारा ॥
सत्य क्रियाते ज्ञानी भैऊ। सत्यक्रिया साहिब मिलगैऊ ॥
सत्य क्रिया सतपुरुष हि ध्यावै। सत्कक्रिया सतनाम मिलावै ॥

साखी–सत्यक्रिया निर्बान है, तन मन ते सो भिन्न।
मन पौना दृढकै गहै, सत्यनाम निजु चिन्ह ॥

चौपाई

अब मैं सांख्ययोग जो कहऊँ । योग अष्टांगको लक्षण लहऊ ॥
एकएकके चार चार लक्षण । जो जानै सो होय विचक्षण ॥
येतो कहिये लक्षण बतीसा । योग अष्टांगमें एकै दीसा ॥
अष्टांग योग सांख्य जो जाने । अरु लक्षण बत्तिस पहिचाने ॥
समौ-तेई भवसागर तरे, याकरनी निजु सार ।
सत्यक्रिया सतसे गहै, सत्यनाम आधार ॥

रमैनी

प्रथमै योग ज्ञान है भाई । ताहिते सुखव परमपद पाई ॥
निरालंब आलंब न कोई । सतगुरु इच्छा होय सो होई ॥
कर्म भरम तजि साहेब जाने । भली बुरी कछु चित्त नहिं आने॥
निरवासनिक वास नहिं कोई । जंगल वस्ती एक सो होई ॥
है निरवैर रहै ततसारा । बाहर भीतर अलख अपारा ॥
समौ-एकनामको जानिके, दूजा देय बहाय ।
तीरथ व्रत जप तप नहिं, आतम ताव समाय ॥

रमैनी

दूजा योग विचार बिचारे । निरमोही है आप बिचारे ॥
है निर्वैं रहै जगमाहीं । जगके सुखमें लागै नाहीं ॥
मातु पिता सुत नारि न भावै । काम क्रोध मद लोभ भुलावै ॥
है निष्कंट शब्दसे लागे । अनहद सुने आतमा जागे ॥
देही छोड़ि विदेह समाना । हंसा पावै पद निर्बाना ॥
समौ-जो कछु करे बिचारके, रह पुन्यपापते न्यार ।
कहै कबीर नामहि जाने, जाय पुरुष दरवार ॥

रमैनी

तीजे योग विवेक कहावै । बिन विवेक कोइ पार न पावै ॥

जाको समाधान मन होई। भली बुरी कहि जावै कोई ॥
समदरशी समज्ञान बिचारे। सबघट भीतर ब्रह्म निहारे ॥
प्रीति गहे सो नाम समाना। और सकल जग मिथ्या जाना ॥
जाके शांति होइ घट नाहीं। कोइ कछु कहै क्रोध मन नाहीं ॥

रमैनी

चौथा योग शील कहि दीना। विना शील साहेब नहिं चीन्हा ॥
निर्मल सोचे सोचि बिचारे। शुचि रुचि दया धर्म उर धारे ॥
मनको संयम करै जो ज्ञानी। पांचों पकरि एक घर आनी ॥
सत्य शब्द भाषै संसारा। सत्यहिसे उतरे भवपारा ॥
होय औतारा सत्य बखाने। भावै बुरा भला कोइ माने ॥

समौ-शीलक्षमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि जब होय।
बिना शील पहुँचे नहीं, लाखो कथै जो कोय ॥

रमैनी

पचवां योग सन्तोष बखानी। बिन संतोष बुड़े अज्ञानी ॥
मानै नहीं रंक औ राजा। है अमान नहिं काहूते काजा ॥
नर्क स्वर्ग बांछै नहिं कोई। होय अबंछक साहेब सोई ॥
मन अस्थिर करि प्रेम उपजावै। अनहद शब्द सुने चितलावै ॥

समौ-निरमल शब्द प्रकाशकर, रह सुखसेज समाय।
सत्य नाम सन्तोष बिन, सत्यलोक नहिं जाय ॥

रमैनी

छठे योग रहै निरवैरा। जाते जगते होय न वैरा ॥
सब घट भीतर एक करि जानी। होय सुदृष्टि परम परमानी ॥
सुख दाई सबहिनको भावै। जलस्वरूप है अग्नि बुझावै ॥
शीतल है सबहीको भावै। समता हो रमताको पावै ॥

समौ-कंचन कांचि है एकसम, दुष्ट मित्र सम एक।
दूजा भाव न जानहीं, एक नामकी टेक ॥

रमैनी

सतवां योग सहज है मीता । सहज भावसे यम से जीता ॥
एक विचार प्रेम उपजावै । पांचों इन्द्री सहज समावै ॥
निरलोभी ह्वै लोभ भुलावै । भवसागरमें बहुरि न आवै ॥
निस्संशीक होय जो कोई । संशय काल रहै नहिं कोई ॥
ह्वै निर्लेप कतहु नहिं लागे । सत्य शब्द गहि आतम जागे ॥
समौ–सब जग जूठा जानिके, सत्य नाम ह्वै सार ॥
सहजे सहज प्रकट भया, सतगुरु शब्द सँभार ॥

रमैनी

अठयौ योग शून्य है नीका । एकनाम आगे जग लागे फीका ॥
शून्नहीते सब जग उपराजा । शून्नहीते शब्द जो बाजा ॥
सहज शून्न जो लावै कोई । अलखको लखै आपही सोई ॥
सहज शून्य जो ध्यान लगावै । भवजल तरत वार नहिं लावै ॥
सुरति शब्द ले सहज समावै । सहज समाधि परमपद पावै ॥
समौ–ज्ञानविचार विवेकते, शील संतोष समाय ।
नाम गहो निर्भय रहो, सत्यलोक सहजे जाय ॥

इति अष्टांग योगकी रमैनी

अथ ज्ञानपरीक्षा चार

निरालंब । निर्भर्म । निर्वासनिक । निरस्वादी ॥ १ ॥

विचारपरीक्षा चार

निरमोही । निरबंध । निःशंक । निर्वान ॥ २ ॥

विवेकपरीक्षा चार

सर्वंगी । सावधान । सुचेत । सारग्राही ॥ ३ ॥

शीलपरीक्षा चार

शुची । संयमी । श्रोता । वक्ता ॥ ४ ॥

संतोषपरीक्षा चार

अयाची । अवांछी । अमानी । अस्थिर ॥ ५ ॥

निर्वैरपरीक्षा चार

सुहृद । समता । शीतल । सुखदाई ॥ ६ ॥

सहजपरीक्षा चार

निष्प्रपंच । निस्तरंग । निर्द्वंद । निर्लेप ॥ ७ ॥

शून्यपरीक्षा चार

लौलक्ष । धीरज । ध्यान । समाधि ॥ ८ ॥

समौ-कबीर बतीसो जब उगवै, तैतीसो छपि जाय ।
कहै कबीर सुन गोरख, आवागमन नसाय ॥

इति अष्टांगयोग स्वसंवेदमतें

अथ सातज्ञानभूमिकावर्णन

दोहा-सीषता बिचार समानता, सिसरातो सुखपंत ।
बहुरि पदार्थ अभावनी, तुरिया ज्ञान गहंत ॥

चौपाई

प्रथम सीषता भूमि जो कहिये । शुभइच्छाते शुभ गति लहिये ॥
ज्ञानचाह सच्छास्त्र उचारन । सत्संगत अपकर्म निवारन ॥
द्वितीय विचार भूमिका सोई । ढूँढ सुसंग सुविद्या जोई ॥
तृतिय समाता है बैरागा । तन मनते विषयनको त्यागा ॥
चौथे भूमि सिस्तांत कहावै । गेह नेह तजि अलग रहावै ॥
हो निवृत्त सब विषय बिहाई । हरिपद प्रीति न और सोहाई ॥
पंचई भूमि सुषुप्ति कहीजै । ईश्वरलीन भर्म भय छीजै ॥
छठे पदारथ अभावनी भाषा । प्रभुपद लीन न सुधितन राखा ॥
ऐसो ध्यान नाह अनुरागा । बिना जमाये सो नहिं जागा ॥
सतई भूमि कहावै तुरिया । जहां पहुंचपुनिचितनहिंफुरिया ॥

ऐसो ईश्वरमें लौ लागे । कोऊ जगावै तऊ न जागे ॥

इति ज्ञानभूमिका

अथ सात अज्ञानभूमिकावर्णन

दोहा-अशुची है जागृतो, महा जागृती गत्त ।
जागृत स्वप्ना स्वप्न, जागृत पुनि स्वप्ना सुषुपत्त ॥

चौपाई

प्रथम अशुचि जागत अज्ञाना । तन सुख चाह सदा अलसाना ॥
दुतिये जागृत जाहि बखाना । अहं कुलीन श्रेष्ठ गुनज्ञाना ॥
तृतिये महाजागत यौं भाषे । दोहू लोक पौरुष हम राखे ॥
ऐसो मैं गुणज्ञान निधाना । मेरे वशमें अहै फलाना ॥
चौथे जागृत स्वप्ना यांचा । जो मैं कहों सुनो सब सांचा ॥
पंचम स्वप्ना जागत भाषा । देखे स्वप्न सुरति सब राखा ॥
छठयें स्वप्न भूमिका कहई । देखे स्वप्न सुरति नहिं रहई ॥
सप्तम भूमि सुपोपति होई । सुधिबुधिरहित जीव जब सोई ॥
सातो भूमि ज्ञान उर धारो । पुनि सातो अज्ञान विचारो ॥
यक पौरीपर दूजी पौरी । होय सघनता अगिली ठौरी ॥
प्रभुमें शुभ इच्छा जब होई । सच्छास्त्रन अवलोके सोई ॥
सच्छास्त्रनको रस भल चीखी । ताकी बुद्धि भई तब तीखी ॥
सच्छास्त्रन पढि भयो जो पक्का । तब तो दुतिय मूगिका तक्का ॥
दुतिय भूमिका आहि विचारा । तब सत्संगतको पग धारा ॥
सत्संगत जब जीव टटोले । तब ग्रन्थनकी ग्रन्थी खोले ॥
जबलों नहिं सत्संगत जूटे । ग्रन्थनकी ग्रन्थी नहिं छूटे ॥
दुतिय भूमिमें जब जिव पागा । तब तृतियेमें हो वैरागा ॥
दृढ वैराग होय जिहि काला । चौथ भूमिकामें पग डाला ॥
जब चौथीमें दृढ जिव भैऊ । तब पंचम हरिपद गहिलैऊ ॥

जब हरिपद तजि और न भावै । तब छटवीं भूमिकामें जावै ॥
भयौ लीन जब छटवीं भूमी । तब तेहि माह रह्यो सो रूमी ॥
जबलों लागि प्रीति अति गाढ़े । सतईं भूमिमें भे तब ठाढ़े ॥
सतईं भूमिमें जब जिव होई । तब नहिं तनहिंमें नहिं कोई ॥
छूटि गयौ तब देहको नाता । तब नहिं जक्त न जगतकी बाता ॥
विद्या और अविद्या दोई । भर्मरूप जानो सब सोई ॥
दोनों ब्रह्मा केर कल्पना । सो ब्रह्मा आवै भ्रम स्वप्ना ॥
ब्रह्मा आप जो भो भ्रमरूपा । ताकी कृत्त सकल भ्रमकूपा ॥

इति

अथ जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति मिथ्यावर्णन--चौपाई

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर टेरे । जीवनमुक्त न माह बडेरे ॥
सो तिहु भवसागरके कारन । बारबार तिनको बसुधारन ॥
व्यास वशिष्ठ पराशर बादा । दशरथ जनको ध्रुव प्रहलादा ॥
सो सब जीवनमुक्त कहावै । पुनि पुनि तन धरि जगमें आवै ॥
सत्यकबीर बचन परमाना । ध्रुव प्रहलाद श्रेष्ठ करि जाना ॥
साठि हजार वर्ष ध्रुव भोगकर । प्रहलाद भोग चौकरी बहत्तर ॥
इतने बड़ा भक्त नहिं कोऊ । आवागौन युक्त रह सोऊ ॥
जेते जीवनमुक्त कहावै । पुनि पुनि तनधरि जगमें आवै ॥
प्रलय विदेहमुक्त सब होई । उतपतिमें तनधर सब सोई ॥
आवै जाय सो मुक्त न मानो । दोनों मुक्ति भर्म करि जानो ॥

सत्यकबीर वचन-शब्द

भर्मसेवा भर्मपूजा, भर्म जपतप ध्यान ।
भर्मकरिकरि भर्मबंधा, नहीं सब पहिचान ॥
भर्म इंद्री करी निग्रह, भर्म गुफा में वास ।

भर्म तो तहँ लोकहो जहँ, जीवनमुक्तको वास ॥
कहो जी तुम आये कहते, जाहुगे किस ठाँव ।
औरको उपदेश देतहो, आप समुझत नाह ॥
जानबेको कहा कहिये, कहेको पतियाय ।
कहै कबीर अनंतरधुनि उपजै, सहज शून्य समाय॥

चौपाई

लोमस ऋषि आदिक मुनि नाना । जिनको हंस कबीर बखाना ॥
कोटिन उत्पति प्रलय जो होई । कबहुं गर्भ नहिं आवै सोई ॥
मुक्तस्वरूप संत कह तिनको । आवागौनसूत्र नहिं जिनको ॥
सारशब्द सतगुरुको लहेऊ । जन्ममरनको संशय दहेऊ ॥
जक्तमाह जेते हैं कर्मा । सो सब मिथ्या जिवको भर्मा॥
झूठ सत्य दोउ एकसम आहीं । यहि संसार सार कछु नाहीं ॥
उत्तम करनी जिवको करना । यद्यपि नहीं सार कछु बरना ॥
गर्भते शिशु बाहर हो जबसे । कर्मकरन लागे सो तबसे ॥
कर्मक्रिया सब तबते जागे । हाथपांव शिशु फेकन लागे ॥
हाथपांव मारन ते जाहीं । नफा होय कछु शिशुको नाहीं॥
शिशुहि भलो कर पगमारनहै । बिन कर पग फेके दुखतन है॥
हो बाल जब अधिक सयाना । माटी धूल खेल अरु काना ॥
ताहु कर्म नफा नहिं पावै । तऊ खेलमें द्यौस बितावै ॥
कर्म करत पहुंचै तरुणाई । लाभ कर्मते तब कछु पाई ॥
सोऊ लाभ नफा कछु नाहीं । सर्व कर्म मिथ्या है ताहीं ॥
आदि अवस्था यथा निहारी । कर्म करत बीते बयसारी ॥
कर्म करनकी बानि न होई । तौ निश्चय जिव जाय बिगोई॥
भलो कर्म करिये तेहि काजा । जाते शुभगतिको सज साजा॥

वेद कि बिधिते जो कोइ ध्यावै। जीवन्मुक्तकी पदवी पावै॥
स्वसंवेद विधि कर्म जो करिये। पाय अमरपद बहुरी न मरिये॥

सत्यकबीर वचन-शब्दहेली

हेली तीरथ जाय बलाय। हरदम परबी नहाय॥
तीरथ कोट अनंत है रे गंग यमुन जहँ दोय।
मध्य सरस्वती बहत है न्हाये निरमल होय॥
ब्रह्म नग्रके घाटमें हो आगे शिवको लिंग।
ताहूँपै दक्षिना दीजिये रे बहे सहसमुख गंग॥
आगे कलाली कि हाट है रे चोखा फूल चुवंत॥
बिन सतगुरु पावै नहीं कोई साधूजन पीवंत॥
शीश उतारि धरनि धरेरे ऊपर धरि ले पाय।
ब्रह्म नग्रके घाट मेरे याबिधि परबी न्हाय॥
ऋग यजुर साम अथर्वना रे चार वेदको ज्ञान।
उनकी कहो उहो कौनगति बांधे गांठि पखान॥
चारवेदको पिता है रे स्वसंवेद संगीत।
साहिब कबीर जूके मोकदिमे रे अविगति ब्रह्म अतीत॥

इति जीवनमुक्तमिथ्या

अथ वर्णाश्रममिथ्यावर्णन-चौपाई

वर्णाश्रम सब मिथ्या जाना। नरकृत सो अज्ञानते माना॥
पूर्व कर्म बिन यहि तनमाहीं। केते विप्र शूद्र है जाहीं॥
केते शूद्र विप्र सो भैऊ। मातु पिता नहिं ब्राह्मण रहेऊ॥
जो कोई वर्णाश्रमते अटका। निश्चय सो सत्पन्थसे भटका॥
मल अरु मूत्र कि देही जोई। ताको ब्राह्मण कहे न कोई॥
ज्ञान द्वार जो ब्राह्मण भैऊ। वर्णाश्रम ताके नहिं रहेऊ॥

राजा पंडित मिसके दोई । वर्णाश्रम थापे सब सोई ॥
जिते जीव वर्णाश्रम बंधा । उत्तम विद्यासे सो अंधा ॥
उत्तम धर्म गहे नहिं पावै । वर्णाश्रम तिनको अटकावै ॥
लहै कबहुं नहिं ज्ञान कि घाटी । जिनको वर्णाश्रमकी टाटी ॥
प्रथम जैन मते मैं भाषा । तीन वर्ण कुल करते राखा ॥
भरथने ब्राह्मण वर्ण थपाई । चार वर्णकुल यहि भांति कहाई॥
चक्रवर्तिपद भरथ जो पायौ । दान देनको प्रजा बुलायौ ॥
प्रजा परीक्षाको मनलाया । बीच राहमें जल ढरकाया ॥
जलमय धरती हो जेहि ठाई । जीव असंख्य तहां प्रकटाई ॥
दान लेनको प्रजा जो चाले । दयावंत पथ गह्यो निराले ॥
जहां कीच तहँ पग नहिं देऊ । भरथ भूप तेहि न्यारा कियऊ ॥
ब्रह्मचीन्हि जिन दाया पाली । कीच बीचमें सो नहिं चाली ॥
ब्राह्मण तिनको नाम उचारा । सबपर श्रेष्ठ धर्मसो धारा ॥
अजयपाल कनउजको राजा । रचे ताहिमें यज्ञ समाजा ॥
सातसौ वर्षके ऊपर भैऊ । लखब्राह्मण सो नेवति बोलैऊ ॥
येतो ब्राह्मण सो नहिं पाये । तब नरेश अस हुक्म लगाये ॥
जो कोइ विप्र चिह्नते आवै । द्विजसम आदर दछिना पावै ॥
वर्ण विवेक न कीने राजा । जो आये तेहि यज्ञ समाजा ॥
भूप सबहि को द्विजकरि माना । विप्रतुल्य दे आदर दाना ॥
केते विप्र बने तेहि बेला । निज गल माह जनेऊ मेला ॥
नृप बुलाय सेनपति बंगाला । ताहूकी कहिये अस चाला ॥
कनउजसे द्विज पंच बोलाई । बंगालेमें सो चलिजाई ॥
ब्राह्मण पांच अरू कायथ पांचा । पहुँच जहां महीपति जांचा ॥
तिन्हे प्रतिष्ठा दीन सो राजा । बस बंगाले सहित समाजा ॥
तिनको वंश पसारा कीना । भिन्न भिन्न पदवी सो लीना ॥

उत्तम मध्यम तिनमें कीने । जैसो कर्म जासु लखि लीने ॥
ब्राह्मण तिनमें तीन बडेरे । चतुरजी वणुर्जी मुकुरजी टेरे ॥
कायथ श्रेष्ठ कहे मुनि तीनी । घोस बोस मीतर कहि दीनी ॥
यहि विधि जात वरण ठहराई । असल नकल दोनों मिलजाई॥
असल नकल मिल एक जो भैऊ। मान बड़ाई जिव सब गहेऊ॥
जात वरनमें जिव अरुझाना । बिन श्रमसाधु सो बंधनभाना॥
जिमि नृप जातिवरन बिलगाई । भांति भांतिकी रीति चलाई ॥
तिमि विदेव तिहुँपुरके राजा । कीने जक्तकेर सब काजा ॥
षट्‌दरशन पांखंड बनाई । श्रुति स्मृतिमें जग अरुझाई ॥
कुल मरजाद थाप सो सारा । बंधनमाह बंधा संसारा ॥
जातिवरनके हद्‌में जोई । संसारी कहलावै सोई ॥
षट्‌दरशनके हद्‌के माहीं । जातिबरनको बंधन नाहीं ॥
सो बेहद्‌के चालनहारे ।साधु सो मुक्तिके मग पग धारे॥
हद्‌ बेहद्‌ दोहू जिन त्यागा । गुरुलखि परमधर्ममें लागा ॥
जाति बरन सब मिथ्या होई । ताको साधु न माने कोई ॥
विप्र शूद्र कर्महि ते होई । उत्तम मध्यम कर्महि जोई ॥
गजते अचल मुनीश उपाये । केशपिंगल मुनि उल्लू जाये ॥
पुष्य अगस्त्य अगस्त्यउपाना । कौशिकमुनि कुशसे प्रकटाना ॥
कपिसे कपिल मुनीस उपाये । लता शाखगौतम ऋषि जाये॥
दोनासे द्रोनाचार्य बखाना । ऋषि तीतरी तीतरसे माना ॥
रजसे परसराम प्रकटाये । शृंगी ऋषि हरनीके जाये ॥
कैवर्तिनसे व्यास कहाई । विश्वामित्र चंडालिन जाई ॥
ब्रह्मा आप कमलसे होई । सकल सृष्टिको करता जोई ॥
वेश्यासे वशिष्ठ मुनि भैऊ । इत्यादिकमुनि ब्राह्मण कहेऊ॥
नहीं ब्राह्मणी इनकी माता । तऊ जक्तमें द्विज बिख्याता ॥

उत्तम मध्यम कर्महि आही। कर्मते उग्र क्षुद्र ह्वै जाही ॥

सत्यकबीर वचन

साखी–जबलगि नाता जातिको, तबलगि भक्ति न होय।
नाता तोर हरि भजै, भक्त कहावै सोय।
बड़े गये बड़ आपने रोम रोम हंकार।
सतगुरुकी परचै बिना, चारो बरन चमार ॥

रमैनी

पहिलो तारो कोरि चमारा। फिर तारो राजन दरबारा ॥

शब्द

नाम सुमिरले अमृत बानी। क्या चतुराई ठाने नर प्रानी ॥
पढेरे भरथरी चारो वेदा। बिन सतगुरु नहिं पायौ भेदा ॥
गोरख खोजत जन्म सिराने। कायाकी गति उनहु न जाने ॥
पंडौने बहु विप्र हंकारा। तबहुँ न घंटबजा ओहि बारा ॥
जबहि जुरेहे कोटिन ऋषि राजा। तबहुँ न घंट अधरबिच बाजा ॥
जबहि श्वपच मंदिर पग धारा। बाजै घण्ट होय झनकारा ॥
कहै कबीर चारो बरन है नीचा। सबसे श्वपच भक्त है ऊँचा ॥

चौपाई

वैशंपायन ऋषिके पासा। नृपतियुधिष्ठिर वचन प्रकाशा ॥
कृपाकरो कहिये ऋषि राया। कहगुनगही ब्राह्मण कहलाया ॥
तब ऋषिराय कहे समुझाई। ब्राह्मणको यह गुण बतलाई ॥
गहे धर्म अरु धर्मके गुनको। कबहूँ अधर्म अकर्म न उनको ॥
दुतिये कबहूं मांस न खावै। कबहूं न कोई जीव सतावै ॥
प्रथमें वस्तु पड़ी कोई पावै। बिन स्वामी आज्ञा न उठावै ॥
काम क्रोध लोभ मोह मत्सर। कबहुँ न जगविषयनमेंचितधर ॥
पंचम गहे पंच न गुन जबही। तप दम दया सत्य प्रियसबही ॥

सोई ब्राह्मण जब ये गुन गहिये । बिन गुन सदा शूद्र तेहि कहिये ॥
जो चंडालमें ये गुन होही । निश्चय ब्राह्मण जानो सोही ॥
षटउर्मी विकार सब माहीं । गुण करि विप्र शूद्र बिलगाहीं ॥
जो गह परमारथ शुभ करनी । मुक्तसे और चाह नहिं धरनी ॥
शमदम दान आदि शुभ गुनगह । ऋद्धि सिद्धिआदिक गुनगन लह ॥
एकै विधि चहुँ बरन बनाया । रुधिर बिन्दुते सबकी काया ॥
सतसंगमें सब एकै जाती । लिखा भागवतमें यहि भांती ॥
नृप शौनक चहुँ बरन बनाये । गुणकरि भिन्न भिन्न बिलगाये ॥
केते शूद्र विप्र ह्वै जाही । केते विप्र शूद्र गुनग्राही ॥

इति वर्णाश्रम मिथ्या

अथ कर्तापुरुष विषै शवजीवनका विचार--चौपाई

अलख अगोचर जो प्रभु अहई । तासु कथा कैसे कोइ कहई ॥
हरि हर ब्रह्मा पार न पावै । और जीवकी कौन चलावै ॥
कर्ता पुरुष जक्तको जोई । ताको नाम न जाने कोई ॥
जेते नाम जक्तते माहीं । राय निरञ्जनको सब आहीं ॥
वेद कहे जस अण्ड उगाये । ताते अण्डज ब्रह्मा जाये ॥
नारा जलको नाम बतायन । जलमें गृह कीनो नारायण ॥
के पुनि जलको नाम कहे जो । जलपर शयन करे सो केशो ॥
निर्णय स्वसंवेद पुनि भाषा । अण्डज देव निरञ्जन राखा ॥
बहुरि कहे तो रेतको लेखा । ईश्वर जलपर तरते देखा ॥
पुनि जम्बुर जाहि निरताये । जलपर शब्द यहूह उठाये ॥
गर्जे यहूह समुद्र न ऊपर । वासा ईश्वर करे जलनपर ॥
यह सबही उर ला व्यौहारा । करता भेद है अगम अपारा ॥
अस प्रभु किमि बिचारते जानी । ताते सुन सतपुरुषन बानी ॥

सत्यपुरुषनकी बचन जो सुनिये । पुनि पुनि निज हृदयेमें गुनिये॥
करि बिचार गहिये सत सारा । जाते उतरे भवनिधि पारा ॥

इति

अथ धर्मव्योरा वर्णन-चौपाई

सब धर्मनको व्यौरा वर्णो । जेते धर्म कर्म संचरणो ॥
स्वसंवेद है सबकी आदी । ताते सकल मता मरजादी ॥
वेद अरु वानी जेते जगमहँ । स्वसंवेद है सकल पितामह ॥
ताते चार वेद प्रकटाने । आदि पिताकी खबर न जाने ॥
स्वसंवेद ते वेद बनाये । तामें ऋषि मुनि मता मिलाये ॥
यज्ञादिकमें हिंसा कर्मा । सो नहिं स्वसंवेदको धर्मा ॥
ऋषि मुनिनिज२शब्द जो मेला । ताते खिला और कछु खेला ॥

दोहा-पा कहिये त्रैदेवको, भाग कहावै खण्ड ।
ताते धर्म जो प्रकट भे, तासु नाम पाखण्ड ॥

चौपाई

षटदरशन सातवे पाखण्डा । धर्म कर्म पृथ्वी नौ खंडा ॥
सबही तीन वेदके अंशा । ऋषिमुनिसकल निरंजनवंशा ॥
स्वसंवेदते वेद भे चारी । ताते चार किताब निकारी ॥
स्वसंवेदते गह त्वच ज्ञाना । ताते सर्व शास्त्र बंधाना ॥
यजुः साम ऋग्वेद जो तीनी । तौरेत जब्बूर इञ्जील कीनी ॥
अथर्वन वेदणे रचे कुराना । मता महम्मद सकल बखाना ॥
पीर नवी निज मता मिलाई । वेद विरुद्ध कर्म ठहराई ॥
यहि विधि भये विरोधी सारे । स्वसंवेद तजि पथगह न्यारे ॥
पांच तत्त्व गुण तीन कहाया । शक्ती और निरञ्जन राया ॥
इनहीकी पूजा जगमाहीं । परमपुरुष कोई जानत नाहीं ॥
शक्ति निरञ्जन छल बल कीने । परम पुरुषपद परदा दीने ॥

भिन्न भिन्न पूजा परकाशा । सकल जीव गल डारे फांसा ॥
रजगुण ब्रह्मा है संसारी । कर्मजाल जिन जक्त पसारी ॥
तमगुण रूप महादेव केरा । भवसागरमें ताको डेरा ॥
सतगुन मारग जो कोउ धरई । भवसागरके पार उतरई ॥
द्वन्द खेल सतगुणमें बर्ते । ताहु भिन्नभाव बहु करते ॥
प्रथमहि विष्णु संप्रदा चारी । दुतिये सत्यपंथ आचारी ॥
वेद कि विधि पूरणता पावै । स्वसंवेद कह तब समुहावे ॥
जीवहि अवश्य कर्म सो करनो । सतगुणकी मारग पग धरनो ॥
सात प्रकार कहों पुनि धर्मा । भिन्न-भिन्न तिनको सुन भर्मा ॥
शक्ति निरंजन त्रिगुन है पांचो । वेद विदित शुभ धर्म है सांचो॥
छठा धर्म कहिये शैतानी । जिनको गुरु इबलीस बखानी ॥
सत्तम धर्म कबीर कृपाला । जरतजक्त जिव जिन प्रतिपाला॥
प्रथमें ब्रह्मा रजगुण कहिये । कर्मकांड सब ताते गहिये ॥
दुतिमें विष्णु उपासना हेता । तृतिये शंभु योग चित चेता ॥
चौथे ज्ञान निरञ्जन राया । पंचम शक्ति पसार्‍यौ माया ॥
तीन तीन विधि तिनमें आही । उत्तम मध्यम कनिष्ठ कहाही ॥
छठे धर्म इबलीसको जाई । तीन विभाग ताहुमें होई ॥ ॥
उत्तम कर्म करंता जोई । बुधि विद्या सागर है सोई ॥
कोउ गुणगण कोउ धनमद पूरे । कोउ बाह विजयी है शूरे ॥
जो मद मान सहित हंकारा । मैं बड़ डोरहि तुच्छ विचारा ॥
मोरे योग गुरू कहुँ नाहीं । सो शैतानको पन्थ गहाहीं ॥
उत्तम कर्म जो करे करावै । मलिन कर्म लख दूर परावै ॥
ऐसे सुकर्म करे जो लोगा । ताते नर्क भोग नहिं भोगा ॥
तिनको आवागौन न छूटे । योनी संकट पुनि पुनि जूटे ॥
दुतिये आपन उत्तम करनी । और सिखाये सुख कह बरनी ॥

तृतिये करे करावै पापू । घोर नर्क ग्रह तिनका थापू ॥

दोहा-विविधि कह इबलीस जन, उत्तम मध्यम नीच ।
जस मति तस गति प्रेरिके, ल्यावै तिनको खींच ॥

चौपाई

कोई रजोगुण कर्म कहीजै । कोई मलीन रजोगुण भीजै ॥
कोई सतोगुण धर्म प्रचारा । कोई मलीन सतोगुण धारा ॥
कोई तमोगुण ऐसे जानो । विविधि भेद तिनमाह प्रमानो ॥
पञ्चधर्म षटधर्म बखाना । इहांलो विषय वासना नाना ॥
यह षटधर्म जक्तमें जागे । सकल नारि नर तिनमें लागे ॥
छवो त्याग सप्तम जब चीन्हा । सत्य पन्थपर तब पग दीन्हा॥
देव कबीर धर्म नयसागर । तापद गहि बीते सब झागर ॥
विषय विकारकी भै तब हानी । सरिता सकल सिंधु समुहानी ॥
निश्चल होहि पाय प्रिय अपना । जहँ नहिं भ्रमभय केर कल्पना॥
मन बानीते पार जो होई । ताकी कथा कहे किमि कोई ॥
मीन विहंग कि मारग ढूँढ़ा । बुद्धिविहीन विचारन मूढ़ा ॥
पढि गुण तोता कहे कहानी । बिना विचार मूलकी हानी ॥

झूलना

मूल जाने बिना धूल रसरीवरे मीन पग पंथ कहु कौन पावै ॥
दूर नेरे नहीं क्रूर हेरे तही बिना गुरु गम्य तेहि को लखावै ॥
जासुको नाम नहीं रूप नहिं रेख है भेष आलेख कह देख कोई ॥
बकता बहु वाय है सार नहिं पाय है धोषको धर्म गहि भर्म भोई॥
स्वप्नकी वस्तु जौं ढूँढ जागृतमें हाथ आवै नहीं यत्न कीनै ।
चारहू दशाते पार सरकार जो तासु दरबार पथ कौन लीनै ॥
खेचरी भूचरी चाचरी अगोचरी योग अरुयुक्ति सब रहै पोले ॥
दुन्मुनी खातजहँ उन्मुनीफिरत है अलक्कीझलकको पलकखोले॥

भक्ति नौधा कही प्रेम पौधा यही बूझि बिन सूझि नहिं यार आवै।
यार चीन्हा नहीं प्यार कीना वृथा नाद अरु नृत्य कह गीत गावै॥

इति श्रीधर्मब्यौरा

अथ वेदधर्म ब्यौरा

दोहा—सतगुण सबमें श्रेष्ठ है, सतगुण विष्णू देव।
सतगुणकी साखा गहे, लहे अगमको भेव॥

चौपाई

सतगुनको सेवै बैरागी। तन मनते प्रभु सेवा लागी॥
चार संप्रदा सगुण उपासी। नौधा भक्ति गहे सुखरासी॥
भाव भक्ति प्रभु प्रतिमा पूजा। राम कृष्ण सम और न दूजा॥
कोई बाल रघुपति कर ध्याना। कोई कृष्ण शिशु सेव प्रमाना॥
नाना भांति सेव जिवधारी। लषण जानकी औध बिहारी॥
गान करहि बहु साधु समाजा। नादनृत्त बाजहि बहु बाजा॥
धर्म वैष्णव परम सोहाई। दान पुण्य अति उज्ज्वल ताई॥
गृह आश्रमी भाव भल धरही। सन्त गुरूकी सेवा करही॥
वेद धर्मकी बात घनेरी। जहँतहँ कविकृत मिश्रित हेरी॥
ताते शुद्ध न ब्यौरा लहिये। जो जिहिभाव सोई गति गहिये॥
पौरानिक बहु कथा कहानी। शुद्धाशुद्ध जक्त बिहरानी॥
व्यास आदि ऋषिमुनि बहुतेरे। जो जेहि भासा सत्यसो टेरे॥
केते पंडितन ग्रंथ सँवारी। व्यासनाम धरि जक्त प्रचारी॥
पुरुष प्रमानि बचन प्रमाना। सो विधि गहे भर्मभय भाना॥
झूंठ सांच जो कछु जगमांही। निश्चय किये सत्य दरसाही॥
झूंठकी जबही झुठाई जाना। तब तेहि त्यागहि पुरुष सयाना॥

इति वेदधर्म

अथ जैनधर्म ब्यौरावर्णन–चौपाई

जैनधर्म जिव दाया भारी । हिंसा पंथ नसो पग धारी ॥
शौच क्रिया जैनीमें थोरी । सतगुण मलिन मतामय सोरी ॥
रात समै ढिग जल नहिं धरही । अशुचि शरीर रहै का करही ॥
अशुचि देह नहिं मन सकुचाही । इन्द्री शुद्ध बिना जल नाहीं ॥
देवी देवकी सेवा साधन । यन्त्र मन्त्र बहु देव अराधन ॥
दिन गति जबहि रैन नियरावै । जल अरु अन्तनसो कछु खावै ॥
प्राण जाय तौ जान दे भाई । मुखमें कबहुँ न जल परिजाई ॥
महा कठिन व्रत जैनी ठाना । भूखसे त्यागे अपनो प्राना ॥
जेते इतर धर्म बहु भांती । जैनी सबहि कहै मिथ्याती ॥
जैनेश्वरकी केवल बानी । इतर ग्रंथ नहिं जैनी मानी ॥
दान पुण्य अरु शौच अचारा । जैन धर्म अति अल्प निहारा ॥
दान पुण्य बिन कर्म जो करही । उर कठोरता जैनी धरही ॥
दान पुण्य नहिं जहां निहारा । हृदयमें न होय उजियारा ॥
दाया कहां जहां नहिं दाना । बिना दान किमि हो कल्याना ॥
तप जप करि साधू कछु सुखिया । जैनी गृही दान बिन दुखिया ॥
जैन यती वह सीष सिषाई । जो ताहूके धन अधिकाई ॥
फूटे कूपमें धनबरु डारो । बिना पात्र मतिदान बिचारो ॥
पात्र बिना नहिं देत जो दाना । तिनके पात्र मिलै नहिं आना ॥
तिनके पात्र हैं साधू जैनी । भोजनदान तिन्है कछु दैनी ॥
घरघरते भिक्षा ले येई । एक ठौर भोजन नहिं लेई ॥
ताते जैनमें दानकि हानी । जीव दया सुख पावै प्रानी ॥
बिना दिये पावे किमि कोई । देन लेन चारो युग होई ॥
दान न करहिं बर्त बहु करही । करि करि बर्त भूखते मरही ॥
जौ नहिं देहै सो नहिं पैहै । निश्चय भूखते प्रान गवैहै ॥

चौथा काल जैनी जो कहेऊ। बज्रशरीर मनुष को रहेऊ॥
जैनी करहि तबहि तप भारी। करि करनी सुख धाम सिधारी॥
अब यह काल होयसो नाहीं। ज्ञान मुक्ति नहिं तिनके पाहीं॥
परमारथ न होय बिनदाना। गहे साधु परमारथ बाना॥
जहँ परमारथ दान कि हानी। तहां सुगति पावै कह प्रानी॥
जैनमते अब मुक्ति न पाई। अन्य धर्म जिवको सुखदाई॥
पंचम काल जैनको येहा। ज्ञानी सन्त धरे बहु देहा॥
और धर्ममें जैनमें नाहीं। जो परमारथ दान कराही॥
धर्मके चार चरण बतलाया। सत अरु सौच दान अरु दाया॥
कलिमें कहा सत्त पदवर्ता। नाम दान कलिमल संहर्ता॥
जैनमें सत्त शौच अरु दाना। तीनों चरण विभंग बखाना॥
महा कठिन तप करि जब ध्यावत। चौथकाल कोई गति पावत॥
अब यहि कालसो व्रतको पाले। एक टांगते धर्म न चाले॥
संबंधी तन मन धन तीनों। यह प्रमान सब धर्महि कीनों॥
तन मन धन बिन कार्य न कोई। स्वारथ अरु परमारथ दोई॥
तन मन दे जब कर सेवकाई। तब धन लाभ होय दुनियाई॥
धनको त्यागि औरको दीजे। तन मन ताते लाभ लहीजे॥
तन मन धन दे जिहि जिन साधा। कोई दुनिया कोई हरि अवराधा॥
तिहुदे सोइ अवश्य लहीजे। जब काहू दिश निज दिल दीजे॥
तिहु बिन कर्म जो साधा चहई। सो शठ हठ अज्ञानी अहई॥
तजि धन साधु जो वनमें बसही। घोर घोर तप करि तन कसही॥
धनको दान दंड तिहि नाहीं। रहे नहीं धन जिनके पाहीं॥
दारिद्री अरु भिक्षुक जोई। ताते दान लेत नहिं कोई॥
जिहि औसर नर वज्र शरीरा। सहे परीसा लहै न पीरा॥
दुःख अनंत देहीपर परही। जप तप साधु गृही दोउ करही॥

महा कठिन तप करि अघ दहई । दोनों यक समान गुण गहई ॥
पंचये छठये कालमें सोई । जनीसे नहिं सो तप होई ॥
दान देनकी बानि न तिनको । कहु कल्यान होय किमि इनको ॥
धन सो धरहि दान नहिं करही । कौन भांति उनको अघ हरही ॥
ताते पंचये छठये काला । जैनी कोइ न मुक्तिको चाला ॥
तनहित धन दे तन सुख पाई । धन जौ गहतौ तन दुख आई ॥
जैनी कहै सुनो रे भाई । मिथ्याती मिथ्या फैलाई ॥
एवनको राक्षस कहि गाया । मिथ्याती सो झूठ बताया ॥
एवन जैनी छत्री सोई । राक्षसनाम वंशको होई ॥
राक्षस वंशी क्षत्री एवन । जैनधर्म ताके मनभावन ॥
ब्राह्मणहिंसा कर अधिकाई । ताते जैन महादुख पाई ॥
यज्ञमें जीव भस्म जब करही । मनमें रोष सदा जब धरही ॥
क्षत्रीवंशके सबही राजा । जैनधर्मधर सहित समाजा ॥
जिवकी हिंसा जबसों देखे । क्रोधवंत धावै यहि लेखे ॥
यज्ञविध्वंस करे सो आई । ताते ब्राह्मण देहि दोहाई ॥
यहि विधि एवन विप्रविरोधी । हिंसा देखी होय अति क्रोधी ॥
ब्राह्मण ताते वैर गहाई । एवनको राक्षस बतलाई ॥
अमिश अहारी मद्यप भाषे । वैरभावको कारण राखे ॥
वीश बाहु दश शीश बखाना । ताको भेदनसो कछु जाना ॥
एवन सिद्ध मंत्र एक करेऊ । ऐसो भेष ताहिते धरेऊ ॥
ताके पास रहै एक माला । ताते ऐसो दरसै ख्याला ॥
सो माला जब गलमें डारे । वीश बाहु दश शीस निहारे ॥
मालाको प्रताप बतलाई । भेष भयंकर लेत बनाई ॥
और मनुष सब देखो जैसे । रातन यकशिर द्वैभुज तैसे ॥
इन्द्रनाम यक राजा केरो । मंत्री जुत्थप तासु चनेरो ॥

अग्नि पौन आदिक जो कहाऊ। इंद्रके दरवारिनको नाऊ॥
इन्द्रहि रणमें रावन जीता। बंधन डारिके देतेहि कीता॥
नृपको जब बंधनमें डारा। मन्त्रिनको कर चेरवा डारा॥
नीचटहल दरबारिन गहेऊ। अग्नि पौन रावन बस भैऊ॥
अग्नि पौन आदिक जो कहेऊ। सो सब नाम मनुषको रहेऊ॥
सुरपति नहिं बंधनमें आवै। मिथ्याती सब कूट बतावै॥
छनमें इन्द्र प्रलय जग करई। ताहि कौन बंधनमें धरई॥
प्रलय करे फिर जग प्रकटावै। सो किमि रावनकी बस आवै॥
ऐसो अग्नि पौन बलकारा। छनमें प्रलय करे संसारा॥
मिथ्याती सब कूठ वर्णके। अग्नि पौन रह बस रावनके॥
ब्रह्मन क्षत्री होय लराई। क्षत्री द्विजनको मारि हटाई॥
परशुराम तब द्विजकुल होई। परमशत्रु क्षत्रीको सोई॥
ताते अनगिन क्षत्री मारा। तब सुभूमि लीवो औतारा॥
क्षत्री चक्रवर्त पदधारा। पशुरामको ताने मारा॥
हनिवर द्वीपकौ राजा जोई। हनोमानको नाना सोई॥
हनोमान ननिओ रे गैऊ। आदर मान तहां बड़ भैऊ॥
हनिवर द्वीपमें आदर पाई। ताते हनोमान कहलाई॥
बानरवंशी क्षत्री सोई। हनोमान विद्याधर होई॥
रूप अनूप महा छबि जाको। कामदेव औतार है ताको॥
वज्र अंग बल बरनि न जाई।गुणगण शील जासो अधिकाई॥
राजा पौन जय कहलाये। हनुमान है ताके जाये॥
पौनते मनुष न जन्मै कोई। यह कपोलकलपित सब होई॥
हनोमानको बानर भाषा। पीठके ऊपर पूछ सो राखा॥
कूठ कथा मिथ्याती कहई। नर वानर किमि संगत गहई॥
बालि सुकंठ आदि नृप जेते। बानरवंशके क्षत्री तेते॥

यह सब विद्याधर कहलाई । नभकी मारग चलै उड़ाई ॥
चंद्रनखा भगिनी रावनकी । सूपनखा तेहि विप्र कथनकी ॥
ब्रह्मन वेद पुरान बनाई । झूठी कथा अनेक मिलाई ॥
चौथा काल बहुरि जब ऐहै । भिन्नतिथ करतब प्रकटैहै ॥
कृष्णलक्ष्मण आदिक जानू । जरासंध रावण हनुमानू ॥
देव तिथंकर जब प्रकटाई । जैनधर्म सब जीव गहाई ॥
जैनधर्म बिधि करनी करही । नर विद्याधर सो मत धरही ॥
अब मिथ्यात फैलि बहु गैऊ । नर विद्याधर अंतर भैऊ ॥
यहि बिधि जैनकथा सब न्यारी । वेदधर्मते भिन्न उचारी ॥
ऐसहि बुद्ध धर्मकी चाली । वेद जैनते कथा निराली ॥

इति श्री जैनमतव्यौरा

अथ स्वसंवेदव्यौरा

दोहा-चारवेदको पिता है, सर्व धर्म गुरु जोय ।
परम पुरुषको भेद है, स्वसंवेद कह सोय ॥

चौपाई

सत्य कबीरको निज मुख बानी । स्वसमवेदसो नाम बखानी ॥
सतगुणपर जब सतगुण सरसे । तब शिव परम पुरुषपद परसे ॥
ताको नहिं जाने संसारा । अलख अगोचर अगम अपारा ॥
नहिं निर्गुण नहिं सर्गुण सोई । निर्गुण सर्गुण निरंजन होई ॥
निर्गुण सर्गुण फंदपसारा । सत्यमता है इनते न्यारा ॥
कहूँ न ताको मंदिर सेवा । सबमई परमातम देवा ॥
जब जिव धर्म कबीर गहंता । बाद बिबाद होय सब अंता ॥
स्वसमवेदकी विधि जो गहई । तामें बहुरि न औगुण रहई ॥
सब औगुणको दूर बहावै । स्वसमवेद विधि तब जिव पावै ॥
इहां न कोई विषयबिकारा । निर्मल जीव सन्त मतधारा ॥

मान सरोवर हंस निवासा । बकुला तहां करहि नहिं बासा॥
भोजन भेक मीन जिन केरा । तिनको डाबर माह बसेरा ॥
जो हरिनाम चुगै शुचि मोती । बसे मानसर तिनके गोती ॥
सब जीवनके जो हितकारी । परमारथमें तन धन वारी ॥
स्वसंवेदकी आस गहाई । अन्य नती बहु रीति चलाई ॥
निर्मल जल अकाशते आवे । भूमि परत डाबर ह्वै जावै ॥
तिमि सब स्वसंवेदते वानी । भिन्न भाव धरिजग प्रकटानी ॥
सत्यपंथके गृही विरागी । परम पुरुषकी सेवा लागी ॥
जुरे समाज जहांयक तीरा । ढोल मृदंग मधुर मञ्जीरा ॥
बजे झांझ खँजरी करताला । बाजन बिबिधि प्रकार सुताला॥
सत्य कबीरको नाद उठावै । रहसि-रहसि प्रभुको गुण गावै ॥
सन्त गुरूकी सेवा माहीं । इन्है समान और कोउ नाहीं ॥
परमधर्म गुरुसन्तकी सेवा । ताते मिले पुरातन देवा ॥
धरे जेते धन द्रव्य शुभागे । सब गुरू सन्त सेवमें लागे ॥
गृही होय गुरु साधू सेवैं । वैरागी तपमें चित देवैं ॥
परम उदार चित्त जिन केरा । सत्यलोकमें तासु बसेरा ॥

इति स्वसंवेद

अथ स्मार्तमत व्यौरा वर्णन

दोहा—सतगुण रजगुण धर्ममय, स्मृती मत संन्यास ।
उत्तम मध्य कनिष्ठ बिधि, कीजे कथा प्रकाश ॥

चौपाई

उत्तम मध्यम जो संन्यासा । सतगुण मयी ताही परकाशा ॥
दीगम्बर दंडी संन्यासी । दोनों धर्म सतोगुण राशी ॥
अब कनिष्ठ संन्यास कहीजे ।जब सत रज मिश्रित चित दीजे॥
कोइ कोइ दुराचार इन माहीं । मद्य मांसको भोग कराहीं ॥

योगी अरु संन्यासी दोई । एक स्वरूप जानिये सोई ॥

इति स्मार्तमत

अथ मीमांसाधर्म वर्णन—चौपाई

रजगुण ब्रह्मा रूप कहावै । धर्म मिमांसा जक्त चलावै ॥
कर्मते श्रेष्ठ और नहिं कोई । कर्महिते सब रचना होई ॥

इति मीमांसा

अथ मूसा और ईसाधर्म व्यौरा—चौपाई

रजगुण तमगुण जहां मिलाई । मूसाधर्म और ईसाई ॥
होम यज्ञ तौरेत बखाना । यथा वेदविधि कीन प्रमाना ॥
सागपात जैसे तरकारी । तैसे नर मद मांसु अहारी ॥
मानुष घातसे पातक माना । इतर जीव सब साग समाना ॥
मूसा धर्म यहूदी धारा । यहि मतको नहिं अधिक पसारा॥
मूसाके कोइ शिष्य न रहेऊ । ताते धर्म कि वृद्धि न भयऊ ॥
अबीरामको जो सन्ताना । मूसाधर्म करे परमाना ॥
सतगुणरूप आहि ईसाई । क्षमा शीलतामें अधिकाई ॥
छल बल रहित दीनता धरही । उज्ज्वल क्रिया शौच आचरही ॥
मद्य मांसको करे अहारा । ताते तमगुणमय ब्यौहारा ॥
भजन अरु दान पुण्य कर थोरा । अधिक रजोगुणते चित जोरा ॥
क्षमा शांति सब औगुण ढकई । भर्मभूत तजि प्रभु दिशि तकई॥
ईसा शिष्य साखा बहु भयऊ । पृथ्वीपर जहँ तहँ रमि गयऊ ॥
देश देशमें धर्म प्रचारा । ईसा गुण सब ठौर उचारा ॥
जेहि औसर यह धर्म चलाई । नर भोले थोरी चतुराई ॥
थोरी विद्या बहुत निरअक्षर । धर्मकी गति जाने तब कहँ नर॥
थोरे ही उपदेशके करते । सब ईसाई धर्मको धरते ॥
यूरुप सबही भयो इसाई । देश एशिया गुण अधिकाई ॥

थोरे मनुष गह्यौ मत ईसा । हिंदू स्थान धर्म धुरदीसा ॥
चरित इहां पादरी आये । विरले जीवहि धर्म गहाये ॥
राज भयौ अंगरेजको जबते । भये अधिक ईसाई तबते ॥
मूसा ईसामतके माहीं । स्वर्ग नर्क निर्णय कछु नाहीं ॥
आतम गुण अरु झीना ज्ञाना । कछु नहिं इनमें कीन बखाना ॥
मोटा ज्ञान धर्म बतलाई । पुण्य पापकी थाप थपाई ॥

इति मूसाईसा

अथ महम्मद धर्म व्यौरावर्णन–चौपाई

तमगुण जहाँ रजोगुण पेला । धर्म महम्मदको यह खेला ॥
बिन अपराध जो मानुष मारे । मारि काटि निज धर्म प्रचारे ॥
यह गुण मुसलमानमें कहई । यक अल्लाहकि भक्ति सो गहई ॥
दुतिये गुण इनमें बड़ भारी । अभ्यागत आदर अधिकारी ॥
दान पुण्य अरु उज्वल कर्मा । चित्त उदार महम्मद धर्मा ॥
भये महम्मद ऐसे दाता । आपअलूने साग जो खाता ॥
माल करोरनको लुटवाई । सह्योक्षुरक्खेकादुःख अधिकाई ॥
वेद धर्मको जैसे देखा । मता महम्मदको तस लेखा ॥
कथा कहानि अधिक मिलाई । सुनी गुणी बहु बात बनाई ॥
स्वर्ग नर्क महि मध्य कहानी । धर्म महम्मद निर्णय ठानी ॥
आत्मवाद कछु ज्ञानको भेदा । जपतपशमदम आदिनिबेदा ॥
मोटा ज्ञान तीन हूको पद । मूसा ईसा धर्म महम्मद ॥

इति महम्मदधर्म

अथ शक्ति धर्म व्यौरावर्णन–चौपाई

धर्म तमोगुण जो लखि पाया । शक्ती धर्म आदि है माया ॥
भवसागर जिन कीन पसारा । नारीते यह सब संसारा ॥
शिव अरु शक्ती रूप द्वै कीन्हा । दोहू रूप मायाको चीन्हा ॥

जब संघट्ट होय दोहु रूपा । ताते जीव परे भ्रम कूपा ॥
द्वंदरूप मायाको खेला । ताते जीवको ज्ञान सकेला ॥
ज्ञानते माया पंथ बिरोधी । भवसागर पद जीव प्रबोधी ॥
हिंसा कर्म बुद्धि जिव घाटी । ज्ञानद्वारे पर दीनो टाटी ॥
भोगे भोग भोगमें रहई । भोगवासना चितमें गहई ॥
भोगमें भौंमि रहा सब लोगा । आवे जाय सहै सो सोगा ॥

इति

अथ अघोर धर्मव्यौरावर्णन–चौपाई

तमगुण पर तमगुण सरसाई । धर्म अघोर परम कठिनाई ॥
नर पशु जीव सकल धरखाही । धर्म विचित्र कहो कह जाही ॥
दुराचारको अन्त अघोरी । जिमि अचार वैष्णव घोरी ॥

इति अघोरधर्म

अथ विचारणीय वार्ता

दोहा–येते धर्म बखानेऊ, इनते कहूँ जो और ।
सकल त्रिगुणमय भक्त हैं, जक्तमाह सब ठौर ॥
त्रिगुणातीत जो कोय कहे, त्रिगुणातीत न होय ।
कहनको त्रिगुणातीत हो, त्रिगुणमें बांधा सोय ॥
जीवनमुक्त विदेह जो, सब तिरगुणके फन्द ।
सार शब्द लहि पार हो, तब जिव होय अनंद ॥

चौपाई

जेते धर्म प्रचारक होही । कहो न जाय कहे का ओही ॥
जिमि नृप थापे देशन देशा । धर्म प्रचारक जगमें ऐसा ॥
एक प्रानि दुतिये मत खंडा । अपनो धर्म धारा प्रचंडा ॥
यक जक्ती यक भक्ती पाला । दोनों ते प्रभु बसै निराला ॥

बिन गुरु गम सो लखो न जाई। कोटिन विधिकिन करे उपाई ॥
यह दश वस्तु आपमें देखो। पांच तत्त्व गुण तीन विशोषो॥
ब्रह्मजीव माया कहि दीनी। एकते भिन्न न दुतिया कीनी ॥
सदा काल सो रहै सघट्टा। कबहु न बिलगहो तिनको ठट्टा॥
सब रचना इनहीते होई। इनको पूजाकर सब कोई ॥
प्रथमैं पृथ्वीकी है पूजा। मूरत थाप आपते दूजा ॥
आठ प्रकारको प्रतिमा कीने। ताहि ध्याय जिव ईश्वर चीन्हे॥
दुतिये जलकरि ईश्वर ध्यावै। योग क्रियाआदिक मनलावे ॥
शौचअचार आदिक सब जोई। वरून देवकी पूजा होई ॥
तृतिये अग्नि हरी सेव अनूपा। यज्ञ होम धूप आदिक दीपा ॥
चौथे पौन देवकी सेवा। प्राणायाम आदिकको भेवा ॥
पंचम शून्य समाधि बखानी। पुनिनिरगुणपुनि आदि भवानी॥
तिनपर ज्योति निरंजन जागे। सकल जीव भक्तीमें लागे ॥
वेदमें यह पूजा बतलाई। वरूण चन्द्र इंद्री रविराई ॥
अग्नि सरस्वती पृथ्वी पौना। तनमें सब रहते लख तौना ॥
थूल वस्तु येती दरसाई। सूक्ष्म थूलमें रही समाई ॥
थूलमें सूक्षम सूक्षममें थूला। सूक्षम सर्व थूलको मूला ॥
सो सूक्षम मोहिते नहिं न्यारा। मोही पाहि बसै मो प्यारा ॥
जेती पूजा जगके माहीं। सो सब अपनो दूसर नाहीं ॥

छन्द अस्कंध

दिलदेउलमें देव पुरातन पूज पुजारी तारा है।
दिलहीमें पूजा सामग्री दिलही ठाकुरद्वारा है ॥
कहुं तीरथ कहुं मूरत थापै सबपरपंच पसारा है।
मनका फेरन कोई जानै मन का फेरत हारा है ॥
उठत बैठत परत रातदिन कानो अंगुली डारा है।

रोजा और नमाज गुजारे पुतली स्वांगसँवारा है ॥
मस्जिद चूनाकंकर है क्यों सौ सौ टक्कर मारा है।
दिलको खोज देवानेमोल्ला दिल अल्लह दीदारा है ॥

चौपाई

अहं अहं ब्रह्म बोलब नहिं जोगू । ब्रह्मकी गति जाने कहँ लोगू ॥
अहं ब्रह्म ब्रह्मा जो भाषा । अपने कर्मको ज्ञान न राषा ॥
विन विचार सबही जिव भटके । सतगुरु त्याग भर्मपुर अटके ॥
भेडर चाल गहै संसारी । रंच न हृदये बुद्धि विचारी ॥
जाने कहवां पुरा पतंगा । दीपक परे होय तन भंगा ॥
बिछाजालजौखग लखि पावत ।दाना चुगनसो कबहुँ न आवत॥
बिना विचार धर्म जिव धरही । सब मिलि बहुरि बड़ाई करही॥
सदा काल जो करे विचारा । तिनके हृदय होय उजियारा ॥
रावनको जो राक्षस कहेऊ । वैर भाव द्विज ताते गहेऊ ॥
ब्राह्मण चार वरण शिर मौरा । तासु वचन प्रमाण सब ठौरा ॥
झूठ होयकै सत्य बखाना । विप्र वचन सब करे प्रमाना ॥
रावन रूप विप्र अस कहेऊ । नौनर यक खरको सिर गहेऊ ॥
विप्र रामलीलाकी वारी । रावनकी जब मूर्ति सँवारी ॥
नौशिर नर अकार बनावै । यक शिर गर्दभको देखलावै ॥
गर्दभको जो शीस सँवारा । सो सब शिरनको ऊपर धारा ॥
गर्दभशीस भले सब देखे । निंदा हंसी होय यहि लेखे ॥
मनुषते रावन राक्षस भैऊ ।खरनिश्चय पुनि मिश्रितकियऊ॥
ऐसो विप्र वचन प्रमाना । चार वरणके लोगन माना ॥
जस रावनमें औगुण मानी । रामचन्द्र तिमिसबगुणखानी ॥
जती रावणता गुणगाहा । सीतारामहि कबिन सराहा ॥
रामचंद्र निजु सखा समेता ।गुणगणअतुलित कहा कविकेता॥

तिमि दोषी दशकंध समाजा । नरगह सत जा कह कवि राजा ॥
परवत सम रावन बतलाई । मृदुल मनोहर सिय रघुराई ॥
शाह सिकन्दर जो यूनानी । ताने विजय कीन युग जानी ॥
जीत्यौ महि रिपु सागर बंदर । दोय शृङ्गशिर गह्यो सिकन्दर ॥
पारस देशको बकरा चीन्हा । जब सो भूमि विजयनृप कीन्हा ॥
शीसपै शाह गह्यो सो गहना । शृंगसिकन्दर ताको कहना ॥
शृंगसहित सिकन्दर सोई । तिमि रावन दशकन्धर होई ॥
यथा सिकन्दर शृंगनवाला । तिमि रावनबीसभुज दशभाला ॥
सहसबाहु ब्रह्मा चतुरानन । विष्णु चतुर्भुज अरू षट आनन ॥
पंचमुखी शिव आदि अनेका । जीवन जाने बिना विवेका ॥
ऐसहि द्वन्द परा संसारा । झूठ सांचकर कौन विचारा ॥
कालभेदको ऐसहि देखा । समुझे बिना करे सब लेखा ॥
द्वापर अन्त भो कलियुग आदी । कौरौ पंडौ भये विषादी ॥
करणराय जब बिनती कीने । परशुरामसे विद्या लीने ॥
परशुराम रघुराम जो दोई । एकै समै दोहुनको होई ॥
जाशिवन्त दुबिदा हनुमाना । शृंगी ऋषि आदिक नर नाना ॥
राजा मय मेरटको जोई । रावन शशुर कहावै सोई ॥
राजा जनक अरू मुनि सुखदेवा । व्यास वशिष्ठ जो भाषे भेवा ॥
इत्यादिक वृत्तांत बहु चाला । सो सब रामकृष्णके काला ॥
कालको भेद न कतहु मिलाया । जक्त जीव माया भरमाया ॥
झूठहु सत्य शुद्ध सो लागा । सत्यकोझूठ जानी जिव त्यागा ॥

दोहा—आदम आधे दिवसलो, कीन बिहिस्त निवास ।
पांचसो वर्षसो अर्धदिन, महम्मद धर्मप्रकाश ॥
कालको मेल सिलै नहिं, सो मायाकी खोट ।
कहुं पलभरी कहुं वर्षदिन, कहु भासे युग कोट ॥

चौपाई

रावन बहिन बिचर वन वाटा। लक्ष्मण तासु नासिका काटा ॥
सो सुनि रावन क्रोधित भेऊ। छल बल करि सीता हरि लेऊ ॥
कोई न लक्ष्मण दोष लगावै। सब औगुण रावणको गावै ॥
निश्चर कीश शृंग द्रुम धारी। रावन रघुपति सैन सँवारी ॥
विविधि भांतिको बिना समाजा। नरगह सत जो कह कविराजा ॥
राम शत्रु रावण जिमि राक्षस। कृष्णके कंसादिक वैरी तस ॥
कंस कृष्ण मामा जग जाना। कर्महि राक्षस और न आना ॥
बेद महाभारत अस कहेऊ। कौन देवता मोहित भेऊ ॥
नाम केसरी वानर चीन्हा। तासु नारिसंग भोग सो कीन्हा॥
ताते हनूमान प्रकटाना। सोई कौन पुत्र जगजाना ॥
बुधिवंतो मन देख विचारी। वानरके नहिं कोई नारी ॥
पशु पंछी कोई ब्याह न जूटी। जेहि संगर मैं सो तासु बधूटी ॥
पौन देवता गुण गण धामा। पशुलखिसोंकिमिहोय सकामा॥
जांबुवंत जम्बूको राजा। रिच्छप रामके संग विराजा ॥
कृष्णशशुर पुनि ताहि बखाना। दियौ ताहि निज कन्यादाना ॥
रीछकी पुत्री रीछिन होई। मानुष संगमेलि नहिं कोई ॥
राक्षसवंशी वानर वंशी। रीछ नाग बछरा खरवंशी ॥
इत्यादिक सब गोत कहावै। बिन जाने कोई भेद न पावै ॥
ब्रह्मन ऐसी कथा उचारा। जैनबुद्धि विष्णू औतारा ॥
तनधरि असुरनको भरमाया। यज्ञ करन से तिन्है हटाया ॥
असुरन यज्ञ त्यागि जब देऊ। सो सब अबल ताहिते भेऊ ॥
करि करि यज्ञ विप्रबल पाई। असुरनको तब मारि हटाई ॥
जैन बोध दायामय धर्मा। तिनके कहा असुरके कर्मा ॥
कर्ता पुरुष जो परम विवेकी। सबके संग करै सो नेकी ॥

काहूको नहिं सो भरमावे । राग द्वेष नहिं ताको भावे ॥
ब्रह्मन वैर जाहिसे गहेऊ । वेदविरोधी असुर सो कहेऊ ॥
पशुपंछी नरको दुःख देही । असुर कर्मकर असुर है येही ॥
कारे राते गोरे अंगा । असुर बखाने नाना ढंगा ॥
असुर कर्म जब जो नर त्यागा । सो अवश्य सुर होय सुभागा॥
लघु दीरघ तन सबही नरके । होहि सुरासुर कर्महि करके ॥
अजौ विप्र जैनीके द्रोही । औसर पाय देत दुःख ओही॥
तिर्थंकरकी मूर्ति जो आही । बाहर जैन निकास जो ताही ॥
ब्राह्मण तब असक्रोध गहाई । पहुँचै ले निजु सखा सहाई ॥
प्रतिमाके ऊपर तेहि बारा । पाथर ईंट करै बौछारा ॥
मुसलमान अस बचन सुनाया । कतल हुकुम अल्लाहते आया॥
जो अल्लाह कतलपै राजी । तो एकै मत जग किन साजी ॥
महम्मदमत जगमें फैलावत । और सकलमत दूर बहावत ॥
जो कलाम अल्लाह कहाई । यह कुरान असमानते आई ॥
सो अल्लाह निकटके कहाई । रह्यौ चराचरमें सो पूरी ॥
सोई कुरान ऐसो प्रकाशी । शहर गते प्रभु निकट निवासी॥
कंठ किनसते निकट जो रहई । पुनितेहिकिमिअकाशपरकहई॥
शहरगते हरि निकट बताई । तासु कलाम दूर किमि जाई ॥
अस नेरे अल्लाह बतावै ।किमि कलाम असमानते आवै॥
जहँ अल्लाह तहँ अल्लाह कलामा । अल्लाह निकट दूर कह कामा॥
जो अल्लाहको नहिं लखि पाया ।तेहि कलाम असमानते आया॥
जो अल्लाहको नहिं पहिचाना । किमि ताकी कलामको जाना॥
जबैह कत्तलते प्रभु नहिं राजी । भ्रमकरि भूले पंडित काजी ॥
कोई कह प्रभु मैं आखिन देखा । चर्मदृष्टिको मिथ्या लेखा ॥
चर्मदृष्टि सब माया भासा ।जो भासा सो सकल विनासा ॥

कोइ कह मैं कोई ठौरमें गैऊ। प्रभुके संग बातकही भैऊ॥
कोई कह मैं प्रभु सपने देखी। कोई कहै घटही मैं देखी॥
कोइ कह मो प्रति भै नभवानी। झूठ साच मैं ताते जानी॥
कोइ कह मैं लखि ज्ञानके द्वारा। सो कस जस बिजुली चमकारा॥
झूँठ सांच भल नहिं लखि पावै। और बात कछु और बतावै॥
यह सब जिवकी भर्म कहानी। विरला कोइ ईश्वर पहिचानी॥
बिना ज्ञानके सब यह बाते। ज्ञानभये भ्रम रहै न ताते॥
जो कोइ साधु ज्ञानके स्वामी। प्रभु इच्छा सब आपै जानी॥
तिन्है न स्वपना नहिं न भवानी। नहि कहुँ अनतबतकही ठानी॥
ज्ञान द्वार हरदम हरिदरसै। दूर जाय कह तापद परसै॥
चार वर्ण ब्रह्मा परकासी। तिमि शंकर तनते संन्यासी॥
शीसते पुरी देह निजु गहेऊ। पुनि भारती माथसे कहेऊ॥
जीभनोकते सरस्वती जाय। गिरपर्वत दोऊ भुजा उपाय॥
पसुलीते सागर तन गन्नो। दोहु जंघते बन आरन्नो॥
दो पदसे तीर्थआश्रम तनधारे। शंकरसे प्रकटे इमि सारे॥
जस बिचार जिवमाह प्रकासा। सो प्रतक्ष है ताको भासा॥
केते ऐसे भये परपंची। छल करि ग्रंथ नयो निज रंची॥
छल बल करि निज नाम छपावै। जगमें इमि निज धर्म चलावै॥
पूर्वाचार्य श्रेष्ठ मत धारी। ग्रंथको करता ताहि पुकारी॥
श्रेष्ठ पुरुषको रचित विचारी। होय ग्रंथको आदर भारी॥
अकबरशाह वोजीर जो फैजी। नयौ धर्म परचारक पैजी॥
ताने नयौ कुरान बनाई। एक वृक्षके बीच छपाई॥
अकबर शाहसे जाय सुनाया। मोकहँ राति स्वप्न यक आया॥
तुमरे नाम नबूबत आई। है कुरान तरुमाह छपाई॥
अकबरशाह अचंभित भयऊ। शीघ्र ताहि तरुतर चलि गयऊ

वृक्षको चीर कुरान निकारा । फैजी छल खुलिगो तिहिबारा ॥
ऐसे केते कपटी जगमें । करे बिगार धर्मकी मगमें ॥
पंडित कह पै पंडित नाहीं । विद्या देखि जीव भरमाहीं ॥
कठिन प्रपंच करे सो लोगा । विद्या पढ़ न भक्ति संयोगा ॥
विद्वज्जन हैं द्वैविधि वक्ता । एक भक्त यक जक्तको ठगता ॥
षट पशु ऐसे कीन प्रमाना । प्रथमैं वेद पशूको जाना ॥
वेदादिक पढ़ि ग्रंथ अनेका । वेद पशू न हृदय विवेका ॥
दुतिय देवपशु गह सुर पक्षा । कह सुर श्रेष्ठ करे जग रक्षा ॥
तृतिये नर पशु ताको कहते । श्रेष्ठ मनुषको पक्ष जो गहते ॥
चौथे शास्त्र पशु शास्त्र ले बोले । पुनि पंचम पुराण पशु टोले ॥
छठे नारि पशु लंपट भाषे । ये षटपशु विचार नहिं राखे ॥

दोहा-गुरुपशु नरपशु वेदपशु, त्रियापशू संसार ।
मानुष सोई जानिये, जाके हृदय विचार ॥

इति विचारणीय वार्ता

अथ धर्मसार वर्णन

दोहा-सर्व धर्म परमान यह, ईश्वर समरथ सत्य ।
किहि विधि सो प्रभु रीझई, कोइ न जाने गत्य ॥

चौपाई

शुभ कर्मनते हरि हर खाहीं । यह प्रमान सब धर्मनमाहीं ॥
शुभ अरु अशुभ कर्म द्वै राखी । दोनों कर्म धर्मते भाखी ॥
समरथ करता दोहुते न्यारा । ताकी गति को जाननहारा ॥
न्याय मिमांसा जैनी भाषे । केते ऋषि मुनि सोइ मद राखे ॥
जीव स्वच्छंद कर्म अधिकारी । जस चाहे तस कार्य सँवारी ॥
केते साधु कथै विपरीती । जिव नहिं सके कर्मकुलजीती ॥
कर्ताकी गति काहु न जाना । कथे अनेकन वेद पुराना ॥

जापर कृपा करे सो सांई । ताकी बाँह गहे बरियाई ॥
ब्रह्मानंद बनावै ताही । सबते श्रेष्ठ होय जिव वाही ॥
बहुविधि जिव शुभकर्म जो करई । बिन प्रभु दया कार्य नहिं सरई ॥
बार बार सो प्रभुहि नमामी । सर्व समर्थ सर्वके स्वामी ॥

सत्यकबीर वचन-शब्द

अवधू कुदरतकी गति न्यारी ।
रंक नेवाज करे वह राजा भूपति करे भिखारी ।
वाते लोग हरफ नहिं लागे चंदन फूल न फूला ॥
मच्छशिकारी रमै जंगल बिच सिंह समुंदर झूला ।
रेंडरूख भयौ मलयागिर चहुँदिश फूटी बासा ॥
तीन लोक ब्रह्मांड खण्डमें देखे अन्ध तमासा ।
पंगा मेरु सुमेरु उलंघै त्रिभुवन मुक्ता डोले ।
गूँगा ज्ञान विज्ञान प्रकाशे अनहद बानी बोले ॥
आकाशहि बांधि पताल पठावे शेष स्वर्गपर राजे ।
कहैं कबीर राम हैं राजा जो कछु करे सो साजे ॥

चौपाई

महागूढ मुनिवर तप कीने । अंत नर्कमें बासा लीने ॥
पतित जौ नर्क भोगवे लायक । कृपा कीने कीन सुरनायक ॥
जौं मैं कर्मकरन समरत्था । ज्ञानमुक्ति तौ सब ममहत्था ॥
मैं हौं कौन कर्म है काको । जीव नहीं जाने परिपाको ॥
जौ यह जानै मैं कछु नाहीं । तौ अभिमान दूर दुरि जाहीं ॥

सत्यकबीर-वचन

साखी-कबीर-पैठा है सब घटनमें, बैठा है संचेत ।
जब जैसी गति चाहत है तब तैसी मति देत ॥
कबीर-बहुबंधनते बांधिया, एक बेचारा जीव ।
जीव बेचारा क्या करे, जौ न छोड़ावै पीव ॥

कबीर-मनको मनोरथछोडिदे, तेरा किया न होय।
पानीमें घिव निकले तो, रूखा खाय न कोय॥

नानकशाह वचन

करै करावै आपै आप। मानुषकै कछु नाहीं हाथ॥
जो कहै कि मैं कुछ कर्ता। फिर फिर गर्भ योनिमें फिरता॥

चौपाई

मैं कछु नहिं कछु है मेरा। अहमित जे अज्ञानते घेरा॥
जो कोई पायौ ज्ञान अमोला। अहंब्रह्म आपा लखि बोला॥
ताहूकी यह दुर गति देखे। लखि नहिंपरतअलखयहिलेखे॥

सत्यकबीर वचन-रेखता

मालिन पुकारे हे पिया है हे साहेब तूने क्या किया॥
यक बून्द लज्जत कारने मन्सूर सूली यौ दिया॥
जल जलकि रोवै माछरी बनबनके रोवै मोरया॥
महलोकि रोवै बीबिया अल्लाह इलाही क्या किया॥
कायाके अंदर खोजिले छज्जेमें तेरा जीव है॥
कहते कबीर गुरु ज्ञानसे तुजहिमें तेरा पीव है॥

चौपाई

जस ईसाकी कथै कहानी। तस मन्सूरकेरि गति जानी॥
दोनोंके मरनेकी बारी। प्रकटे केते चीन्ह भयकारी॥
ऋषि मुनि जैसे करनी करही। तैसी हानि लाभमें परही॥
ज्ञानी ध्यानी प्रभु नहिं जाना। पाय कर्मफल सुख सब माना॥
कबहु कबहु विपिरीति देखावै। उत्तम कर्म तुच्छ फल पावै॥
जैसो नीक नाथको लागा। तैसोई तप फल जिव मागा॥
कुंभकरन तप करि हरि टेरी। मांगसि नींद माष षटकेरी॥
बारह लक्ष वर्ष तप भारी। कर इबलीस हदीस पुकारी॥

कछु नहिं ताको बस तहँ चाला। अंतकाल तेहि नर्कमें डाला ॥
जीवकि वसमें जो कछु रहता । तौन सुकर्म नीच गति गहता॥
येशुवा बहूदिनको लेआयो । ईश्वर कृपा ताहि परछायो ॥
जबकन आनदेशमें आया । तह बल्लाम साधु यक पाया ॥
तीनसौ वर्ष कीन तप जोई । जो कछु कहै सत्य सब होई ॥
बाद येशुपासे सो ठानी । तीनसौ वर्षकी तप विनसानी॥
जब जहि जस चाहे तस करई ।जीव जतन कछु काज न सरई॥
किनको नाथ दीन बरदाना । निज भ्राता पर हो जय माना॥
जीत्यौं प्रभु आज्ञा अनुसारा । कोई न भा दोषी हत्यारा ॥
मूसा प्रभुकी आज्ञा पावो । चलि फिर उन भूप समुझावो॥
देय यहूदिनको सो जाना ।पुनि अस वचन कह्यौ भगवाना॥
मैं फिर उनको करों कठोरा । मूसा वचनसे मुख सो मोरा ॥
फिर उनहिय प्रभुकरि कठिनाई । मूसाको तब कहा बसाई ॥
को अस बली जो ताहि उबारा। प्रभु जेहि आप डुबावन हारा ॥
जैसे प्रथम भव्यकी बानी । हसन हुसेन मृत्यु इमि जानी॥
कीन हुसैन युक्ति बहु तेरी । पहुंचे मृत्यु महि मरनकी बेरी॥
यकदिन अस कौतुक बतलाये । महम्मद द्वै किताब ले आये ॥
यक किताब दहने कर गहई । दूजी बाम हाथमें रहई ॥
दहने हाथ किताब जो दिखावा। नाम बिहिस्तिनकोतहँलिरकवा॥
जो किताब बायें कर आही । नारख नाम लिखा तामाही ॥
प्रथमहिते भे स्वर्गी नर्की । कुदरतकी गति जाय न तर्की॥
प्रभु केकइकी मनि हरि लीनो । रामचंदरको सो बन दीनों ॥
केकइको कह दूषन दीजै । हरिइच्छा किन अटक कहीजै ॥
बाबुल बुर्ज बनावन लागे । सब नर तिय तेहि उद्यम पागे॥
ताते नहिं ईश्वर सुखपाई । सबकी बोल दियौ पटलाई ॥
बरने बेद उपनिषद साखी । देव दनुज दोऊ दल रन भाखी॥

हारे असुर सुरन जय पाया । विजइन मन अभिमान समाया॥
जब देवन कीने अभिमाना । ब्रह्मरूप तब तहँ प्रकटाना ॥
ऐसो तेजमई सो रहेऊ । कोईसुर नहिं सन्मुख ह्वै सकेऊ॥
सब सूर अग्नि पौनको टेरी । तेहि औसर तहँ दांउ कर फेरी॥
सब सुर अग्नि पौनसे कहेऊ । ब्रह्मरूप जो प्रकटे भैऊ ॥
हम सन्मुख ह्वै सके न ताही । तुम करि कृपा तासु ढ़िग जाही॥
ताढ़िग पौनदेव जब गैऊ । ब्रह्म ताहिते पूछत भैऊ ॥
तुम हो कौन कहा तौ कर्मा । पवन देवता भाष्यौ मर्मा ॥
नाम पौन सुर मेरो होई । जो कुछ होय उडावो सोई ॥
तहां रही यक तृणकी ढेरी । ब्रह्मसो पौनको पौकहि टेरी ॥
वह ढेरीको देह उड़ाई । पौनदेवकर बल अधिकाई ॥
यक तृण तासु न सका उड़ाई । बलकरि पवनदेव थकि जाई ॥
लज्जित पौन गौन धरकीने । अग्निदेव पुनि तहँ पग दीने ॥
पूछै ब्रह्म कौन तू भाई । अग्निदेव निजु नाम सुनाई ॥
पूछै ब्रह्म कर्म तो काहा । अग्नि कहे मैं सब कुछ दाहा ॥
कहे ब्रह्म तृणढेर जलावो । अग्निदेव वह जोर लगावो ॥
तृण यक भस्म न सो करसकेऊ । जोर लगाय अग्नि तहँ थकेऊ॥
तब लजायके अग्नि सिधारा । ब्रह्मा सो गुप्त भयौ तेहि बारा॥
देवी प्रकट भई तेहि काला । देवनसे कहा बचन रसाला ॥
तुम अभिमान भंजवे कारण । ब्रह्मस्वरूप कियौ निजु धारण॥
तुमरे मन हंकार जो आया । हम असुरनको मारि हटाया ॥
तुमरो कियौ होय कछु नाहीं । हानि लाभ विधिकी बस आही॥
सर्वसमर्थ सर्वको दाता । ताकी गतिनहिं लख्यौ विधाता॥
सो सबहीको खेल खेलावै । वाजीगर गतिको लखि पावै ॥
सबहीको जिन गर्व प्रहारा । लखि नहिं परत अलख करतारा॥

बल वीरज विद्या चतुराई । बाजीगरको खेल बनाई ॥
तीन देव जेते औतारा । कर्मके बन्धन नाचै सारा ॥
नाचै ब्रह्मा नाचै विष्णू । नाचै शंकर नाचै जिष्णू ॥
नाचै आप निरंजन ज्ञानी । तन धरि नाचै आदि भवानी ॥
नाचै ब्रह्म रुद्र हरि नारी । पीर पयम्बर नाचै झारी ॥
सिद्ध साधु सुर नर मुनि नाचै । सतगुरु कृपा सन्त कोई बाँचै ॥
अहंकार करिके अज्ञानी । चाहत हरिमाया तरि जानी ॥
एक तपीकी कहो कहानी । जो अज्ञानते तप दृढ़ ठानी ॥
सो निज मन अस कीन बिचारा । तपकरि चल हरि माया पारा ॥
ऐसी अपनी देह बढ़ावो । माया लंघि ब्रह्म मिल जावो ॥
ऋद्धि सिद्धि बल तामें जागा । तप करि देह बढ़ावन लागा ॥
महादीर्घ देही जब कीने । ब्रह्मचिंतवनमें चित्त दीने ॥
बढ़ तन ब्रह्म प्रभा परशनमें । अंग उतंग भंग मैं छनमें ॥
ब्रह्म प्रभाको कीन जो ध्याना । ताछन बड़ा वपुष बिनसाना ॥
महादीर्घ तन ह्वै गिर परेऊ । पुनि सो मच्छरको तन धरेऊ ॥
घासनमें सो कियौ बसेरा । फिरत एक मृग वनमें हेरा ॥
तब ताको मृग लात जो लागा । ताते सो मच्छरतन त्यागा ॥
सुरति मसक मृग माह समाई । मच्छरतन तजि मृगतन पाई ॥
तेहि मृग मारन चले शिकारी । आय ताहिपर शस्त्र प्रहारी ॥
जब मृग निज तन त्याग कराई । बधिकमें ताकी सुरति समाई ॥
ताते बधिक भयौ मृग सोई । एक दिन वनमें विचरत होई ॥
विचरत बनहि मिले मुनि एका । ज्ञान दिये तेहि सहित विवेका ॥
मुनि उपदेश बधिक जो पाई । बहुरि सोभक्ति भाव मनलाई ॥
करि हंकार कर्म जो करहीं । तिनको कबहुं न पूरा परहीं ॥

दोहा–राम बढ़ावै सो बढ़े, और बढ़ै नहिं कोय।
बलकरि बढ़ै जो रावन, पलमें डारयौ खोय ॥

चौपाई

वेद कहै जो ऐसो लेखो। ईश्वर सर्व मयी बुध देखो ॥
वेद कह कर्म कर्‍यौ नहिं अर्पन। ताको अर्थ विचारो निजमन ॥
महा करता महा भोगी जैसे। महा त्यागी पुनि जानै तैसे ॥
त्यागी महा जानिये सोई। जासु हृदय हंकार न होई ॥
जाके हृदये ऐसो बरता। मैं नाहीं कछु कर्मको करता ॥
मैं नाहीं हरि आपै आपू। सो नहिं कर्म आपनो थापू ॥
जाने ऐसो कीन विवेका। पुण्यमान पापी तेहि एका ॥
मित्र शत्रु ताके कोइ नाहीं। जहां तहां हरि आपै आहीं ॥
कोई नहीं सुख दुःखको दाता। मैं तू जग सब भ्रमकी बाता ॥
जिन विचारि लीना यह लेखा। सर्वमयी तिन ईश्वर देखा ॥
जेहि ईश्वर सब मयलखि आवै। पूरन पण फल सोई पावै ॥

रामचंद्र वचन

दोहा–जिनके हृदय विचार अस, मति न टरै हनुमंत।
मैं सेवक चराचर, रूपराशि भगवंत ॥

चौपाई

भालू कीश कटक ले साथा। लंकापर चढिगे रघुनाथा ॥
सहित सेन रन रावन मारा। दोहु दिश जूझै बहुत जुझारा॥
सुधा वृष्टि भै दोहु दल माहीं। जिये भालूकपि निश्चर नाहीं ॥
नाहीं राक्षस जिय कपि रिच्छा। ऐसी परमेश्वरकी इच्छा ॥
विष अमृत रिपु मित्र बनावै। भावे न्यारा खेल देखावै ॥
जापर कृपा करे करतारा। कन यक छनमें होय पहारा ॥

सोरठा-पुण्य पाप मोहि नाहिं, निर्लेपो निरद्वंद मैं ।
बंधा बंधन माहि, विधि निषेधको ज्ञान गहि ॥

चौपाई

मैं यक भर्म पूतसा ठाढ़ा । मेरे हृदय मान अति बाढ़ा ॥
मेरे विद्या गुण चतुराई । मैं सुन्दर छबि रूप निकाई ॥
मैं कुलीन उत्तम सब लायक । मेरो कर्म सकल मनभायक ॥
पुण्यते हर्ष पाप डर कापे । कर्म अकर्म आप शिर थापे ॥
जौजिव बिधिनिषेध नहिं जानत । तौ कछु कर्म धर्म नहिं ठानत ॥
जानि बूझि करि है जो पापा । निश्चय ताहि नर्कदुःख व्यापा ॥
ऐसो मूढ कौन जगमाहीं । खरा खोट जो जानत नाहीं ॥
जो कोइ पुण्य पाप नहिं जाना । शिशुसमान निर्दोष बखाना ॥
जबते आदमको भो ज्ञाना । अहं भोगता करता जाना ॥ ॥
तबते परा कालको फांसा । पुण्यपापको व्यौरा भासा ॥
षटदरशन आतमको झगरे । न्यारे न्यारे मारग डगरे ॥
पीर पयंबरको मत न्यारा । एक विरुद्ध दुतिये व्यौहारा ॥
करतागति जो कोई लखिपावत । तौ काहेको झगर मचावत ॥
जिमि अंधरनमिसि चीन्हा हाथी। एक समान तासुके साथी ॥
मैं नहिं तू नहिं वह नहीं कोई । कहि नहिं जात ख्याल क्या होई॥
जो मैं ही तो मोहि किन बंधा । पायौ ज्ञान गुरूकी संधा ॥
आप गुरू अरु आपै चेला । कहि न जात कुदरतको खेला॥
दुतिया बिन कौ ज्ञान गहावै । ज्ञानते दुतिया नजर न आवै ॥
ज्ञान पाय दुतिया नहिं माना । दुतिया धौं मोहि माह दुराना॥
अभीकुंडमें चिऊँटी डूबी । स्वाद पाय जान्यौ कछु खूबी॥
कुंडको अंत न पावै कबहूँ । कोटिन गोता मारे जबहूँ ॥
अस विज्ञान गम्यको गहई । ताको पारावार न लहई ॥

आपै भीतर बाहर बोले। बिरला साधु सो भेद टटोले॥
देय दिलावै मागे जोई। सकल कर्मको करता सोई॥
आपै देय आप नटि जाई। आपै चलै आप हटि जाई॥
सिद्ध साधु चकित ह्वै थकही। सतासत न कछु कही सकहीं॥
स्वप्न अवस्था जब जिव परई। अपनी बस कछु कर्म न करई॥
स्वप्नदशामें जाने सोई। यह सब कर्म आपनो होई॥
जब जाग्यौ तब न्याय निबेरा। मेरो कर्म न सपने केरा॥
चार अवस्थाके सब कर्मा। ऐसेहि जानि लेहु जिव भर्मा॥
चहूँ अवस्था मिथ्या राचा। ताको कर्म होय कहँ साचा॥
ऐसेहि ज्ञान अवस्था माही। सर्वकर्म मिथ्या दरसाही॥
मैं नहिं मैं मिथ्या अभिमानी। भर्मते कर्म आपनो जानी॥
संत सुजान यह मनहि विचारी। सब मद मान दूर करि डारी॥
अहंकार है नर्क निसानी। भक्ति गरीबी जीव सुख दानी॥

दोहा—जानि बूझि जो जड़ भया, आपको जानै नीच।
सोई सबसे श्रेष्ठ है, ज्ञानगम्य तेहि बीच॥
जाना नहिं बूझा नहिं, जो जड़ दशा गहाय।
अज्ञानी मूरख सोई, सो न भक्तिपद पाय॥

सत्यकबीर वचन-शब्द

दासको दीनता जब आवै।
सो पद देव दास अपनेको शिव ब्रह्मा नहिं पावै॥
औरनको पूरा करि जाने आपको ओछ कहावै।
अवधूतन ते सत कहत हो सो मेरे मन भावै॥
एकै ब्रह्म सकल घट देखे दुबिधा दूर बहावै।
इन पांचोंसे तोरि सनेहा जब गोविंद गुण गावै॥

होय अधीन प्रेम लौलावै कुल अभिमान मिटावै ।
सहज शून्यमें रहे समाई पढिगुण सब बिसरावै ॥
गुरुकी दया साधुकी संगती भावभक्ति चितलावै ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन परमपद पावै ॥
कौन हमारे आये केशव क्यौं न हमारे आये ।
षट रस व्यंजन छोटि रसोई साग विदुरघर खाये ॥
जहँ अभिमान तहाँ हम नाहीं वह व्यंजन विष लागे ।
सोई मुनिजन पूरा कहिये अभिमानीको त्यागे ॥
जातिहीन जाके कुल नाहीं है दासीको जायौ ।
ताकीट परिव्या तुम जायके बैठे कहा बड़ापन पायौ ॥
सत्यासत्यवचन कहो दुरयोधन सुनिले बात हमारी ।
विदुर हमारे प्रानसो प्यारे तुम विषिया बेकारी ॥
पुरातन कथा तुम्हारी हरिजी वनमें छाक मँगाई ।
ग्वालनके संग भोजन करते सो मति तुममें आई ॥
प्रेम प्रीतिके हम हैं भूखे अभिमानी नहिं भावै ।
कहैं कबीर साधुकी महिमा हरि अपने मुख गावै ॥

रामचंद्रवचन–चौपाई

सबहि मानप्रद आप अमानी । भरथ प्रानसम ते मम प्रानी ॥
वेद प्रमान आदि ओंकारा । सो करता सोई श्रुति सारा ॥
सो ओंकारको अर्थ बखानो । दीनता और गरीबी जानो ॥
जहँ दीनता गरीबी बसई । सबगुण ज्ञान ताहिमें लसई ॥
तौरे तो इञ्जील सोयी नय । आहि दीनता ज्ञान गुणनमय ॥
पुनि जब्बूर कहे सो हेता । दीनको प्रभु सोभा गति देता ॥
पुनि कुरानको सोई मत हेरी । ऊँच बोल है गर्दभ केरी ॥
गदहा पर ईसा चढि चाले । सो दीनता धर्म प्रतिपाले ॥

धन्य दीनता कह इब्लीला । ताते हो जिव बंधन ढीला ॥
जूठी बेर सेवरी ल्याई । रामचन्द्र अति रुचिते खाई ॥
लक्ष्मन निर आदिरकर ताही । भिलनी जूठा हम नहिं खाही ॥
भई सजीवन बूटी सोई । लक्ष्मन प्रान बचायौ सोई ॥
पंडो यज्ञ जुरे ऋषि भूरी । स्वपचभक्त विन यज्ञ न पूरी ॥
जातिपातिकुलगुण अभिमानी । भ्रमत फिरे चौरासी खानी ॥
भगते भगवा भेष बनाये । शिव शंकर निज शीश चढ़ाये॥
आदि भक्ति शिवजक्त प्रकाशी । भगवा भेष धरे संन्यासी ॥
भग पृथ्वीका रूप कहाये । तात भगवा वरन बनाये ॥
पृथ्वी तुल्य गरीबी आवै । संन्यासी जीवत मरिजावै ॥
बैरागी जो तिलक लगाई । ले मृतिका निजमाथ चढ़ाई ॥
आदम अघ तौ रेत प्रसंगा । कीनो प्रभुकी आज्ञाभंगा ॥
अदन बाहर आदन भैऊ । ताते प्रभु पुनि ऐसे कहेऊ ॥
खेहसे तेरी देह बनाई । जबलों बहुरि न तेहि मिलिजाई ॥
तबलौं श्रम करिकरिके खैहो । अब नहिं अमृत फलको पैहो ॥
ताको ऐसो गहिये ज्ञाना । जीवतही मिट्टी मिल जाना ॥
मुये तो सबही मिट्टी होता । पावै कर्म बीज यश बोता ॥
जीवतही लोधू मरजाना । यही सकल मतको परमाना ॥
चरनामृत अरु शीत प्रसादा । ताको आहि बड़ो मरजादा ॥
करिके कृपा साधु जो देही । दीनको शिष्य सेवक सो लेही ॥
ताको ऐसा अर्थ बिचारी । गहो गरीबी सब नरनारी ॥
बहुरि शिष्यसे भीख मंगावै । ताते तासु मान बिनसावै ॥
सुरगणजो अतिगुण गण धामा। आदमको कर दंड प्रणामा ॥
कारण यही तासुमें पायौ । प्रभु दीनताको श्रेष्ठ देखायौ ॥
कह आदम मिट्टीकी मूरत । कह इबलीस-दीप्त शुचि सूरत ॥

कह नारद ब्रह्मा सुत होई । कहब पुरा कैवर्तक जोई ॥
कहु सुख देवगर्भके योगी । कह नृप जनक विषयरस भोगी॥
कह मूसा गुण ज्ञान निधाना । कह इबलीस दोजखी जाना ॥
बिनदी मतान जिव कोई तरिहै। करि सुकर्म भवसागर परिहै ॥

नानक शाह वचन

दोहा-नानक नन्हे हो रहो, जैसी नन्ही दूब ।
घास पात जरि जाहिगी, दूबखूबकी खूब ॥

सेख फरीद वचन

दोहा-फरीदा ऐसा हो रहो, जैसा करकख मंसीत ।
आठोपहरलताडिये, तेरीरब्बनालरह प्रीत ॥
सोरठा-धर्मसार यह जान, भक्ति दीन ता दिल गहे ।
तजि दीजै मदमान, होयपरम कल्यान तब ॥
तनमनधन गुरुअर्प, करनीकर गुरुद्वारनिज ।
बहुरि काल नहिं दर्प, प्रेमभाव पद पूजिये ॥

इति श्रीधर्मसार

अथ सर्वधर्मएकता वर्णन-चौपाई

एकै धर्म सकल संसारा । भिन्न भेदते दरसै न्यारा ॥
विषय अमृतमें दियौ मिलाई । ताते जिवकी सुधि बिसराई ॥
सत्त पंथ तजि कुफुर कमावै । न्यारी राह जीवको भावै ॥
कहु तीरथ व्रत मूरति बताया । कहुमदमास हरामको खाया ॥
जारी जोर जुलुम कहुं देखो । यक अल्लहको न्यारो लेखो ॥
उज्वल करनी सब देखलाई । तामें कछुक हराम मिलाई ॥
जबलों भोगकिआसा रहई । तबलों जिव हराम गतिगहई ॥
भोगकि इच्छा दिलसे त्यागे । तब जिव सत्य पंथमें लागे ॥
विषय विकारते मुक्ति न पावै । सतगुरु त्याग औरको ध्यावै ॥

परम पुरुष पदको जब त्यागा। तब हराम कारीमें लागा ॥
जीव गँवायो ज्ञान कि थैली। तजि शुभकर्म करै बदफैली ॥
जौन विकार जाहि मत माहीं। तजि सब जिव निर्मल ह्वै जाहीं॥
निज औगुणजब जिव पहिचाना। भर्म छांड़ि शुभ धर्महि जाना ॥
हृदयमें जब उगे विवेका। तब सब जिवके मत हो एका ॥
सत्य पुरुषकी भक्ति जो गहेऊ। तजि विकार तब अमरसो भेऊ॥

इति सर्वधर्मएकता

अथ ब्रह्माण्ड और पिंडकी एकता—चौपाई

यह ब्रह्मांड सकल है पानी। तामें अद्भुत ख्याल उपानी ॥
अण्ड पिंड दो उदधि अपारा। इन्द्रजाल तामें विस्तारा ॥
रच्यौ ख्याल यह बाजीगरको। अन्न लहेको भवसागरको ॥
अण्डाकार पिंड ब्रह्मण्डा। तामें सकल द्वीप नौखण्डा ॥
यह समुद्र है अगम अगाहा। भरमत जीव न पावै थाहा ॥
चौरासी लख गोता खाहीं। बूड़े उछले पार न जाही ॥
जिमि ब्रह्मांड समुद्र बखानी। तिमियह पिंडबून्दयकजानी ॥
सिन्धु बून्द दोनों यकरूपा। कहिनजाय अति अकथअनूपा॥
सिन्धुमें बून्द बून्दमें सागर। जाने बिनापऱ्यौ जगझागर ॥
जो कछु रचना सिन्धुमें परखो। ज्यौंकीत्यौंसोई बुंदमें निरखो ॥
वारिद बुंद विचार विलोका। दोनों द्वैधौ दोनों एका ॥
दोनों एक तुल्य है चोखे। विषय विकार दोहुनको पोखे ॥
इंद्रिन सहित दोहु एक सारा। दोहुमें एकै खेल पसारा ॥
ताते प्रथम पिंड गति जानो। पुनि ब्रह्माण्डको लेखा ठानो ॥
पिंड खेल जबलों नहिं लहई। अंडलेख तबलों कह कहई ॥
पहिले पिंड आपनो तरना। पुनि ब्रह्मंडके पार उतरना ॥
जाते पिंड तरो नहिं जाई। सो ब्रह्मां पार कह पाई ॥

जबलों देह सत्यकरि जानी । तबलों पिण्ड तरे नहिं प्रानी ॥
आदिमें अण्ड रूप यक रहेऊ । हिरण्यगर्भ ताहीको कहेऊ ॥
हिरण्यगर्भ निज मनहि विचारा । द्वन्द्व खेल तेहि काल सँवारा ॥
हिरण्यगर्भ प्रजापति मेला । ताते खिला जक्तको खेला ॥
फूटा अंड भयो द्वै धारा । ताते द्वन्द्व जक्त हितकारा ॥
द्वन्दमता संसारहि मेले । नर नारी दोउ जगमें खेले ॥
दोनों मिले होय तब रचना । सकल स्वरूप ताहिते खचना ॥
जिहि अवसर जिव भर्महि भंडा । जो कछु पिण्ड सोइ ब्रह्मण्डा ॥
आपै लखे लखो सब जाई । आपहिमें सब सृष्टि समाई ॥
माया ब्रह्म मेल जब होई । यह संसार खेल तब होई ॥
माया दीख ब्रह्म नहिं दरसै । शून्य स्वरूप ताहिको परसै ॥
बिंदु रुधिर दूनो हैं पानी । अंड पिंड रचनाको खानी ॥
बिंदु पिता लोंहू है माता । श्वेत अरुण कहिये द्वै बाता ॥
यकभो द्वन्द द्वन्द जब टूटे । ह्वै अनन्त सब जगमें फूटे ॥
रुधिरसे तीन धातु प्रकटानी । चाम मासु अरु रुधिर बखानी ॥
तीन धातु नर बिन्दुसे होई । हाड अरु गूद बिन्द कह सोई ॥
माता तीन पिता मलतीनी । ताते जगकी रचना कीनी ॥
माताको सब कोई लखि पावै । पिता काहुकी नजर न आवै ॥
मातामें रह पिता छपाई । ताते कोई देखि नहिं पाई ॥
माता जबहि पिता बतलावै । तब कोई खबर तासुको पावै ॥
माताको अभाव जब होई । पिता दरस तब कर सब कोई ॥
यह दृष्टांत में प्रकट बखाना । मायामें इमि ब्रह्म लुकाना ॥
चाम मास लोहू है बाहर । हाड अरु गूद बिन्द है भीतर ॥
माता जैसे पिता छपावै । माया ऐसे ब्रह्म दुसावै ॥

माया ब्रह्म जीव कह आहीं । मोते इतर और कछु नाहीं ॥
आपै खोजि आपको पैये । और कहा केहि खोजन जैये ॥
पिंड अंड दोनों यक लेखो । बाहर भीतर एकै देखो ॥
पग पाताल कहे सतइ महि । चरण पृष्ठ पाताल छठा कहि ॥
पद अंगुली सो कहे असुरगण । पदके नख असुरनके बाहण ॥
अष्टालिग महातल पञ्चम । पेडीतलातल चौथ विरञ्चम ॥
ठेघुनी सुतल तीसरे कहिये । जंघको बितल दूसरो गहिये ॥
काल समय अथवा यज्ञ होई । पाव चलनको कहिये सोई ॥
भगसो अतलहै पहिली धरनी । लिंग ताहि प्रजापति बरनी ॥
वरषा बीज नाम महि भनिये । महिते सो आकाशलो गनिये ॥
चूतर माथ सौ प्रभा प्रभाता । श्वेत रंग जो प्रथम लखाता ॥
मोट मास अथवा कह माया । सो प्रदोष सन्ध्या बतलाया ॥
नाभी गंभीरता है जोई । क्षीर समुद्र बखानो सोई ॥
इत जठरा उत बडवा आगी । नसा जाल सरितागण जागी ॥
पेट सो भुवर्लोक पहिचानो । बालभोग लघु पर्लय जानो ॥
तृषा सो लघु पर्लय जग सोवन् । हृदया स्वर्ग भूमि ऊपर भन् ॥
इत वैजन्ती माला जोई । उत लघ्नादिक जाला सोई ॥
दक्षिण कुच यहि भांति बखाना । मांगनके प्रथम दे दाना ॥
बाम पयोधर ताहि कहीजे । दान याचना पीछे दीजे ॥
मन सोई गुण तीन मिलाना । रज सत तमगुण कीन प्रणामा ॥
मनसंकल्प सोई है ब्रह्मा । जग रचना जिन कीन अरंभा ॥
पोषण गुणसों वदे विष्णुवर । क्रोधहनन हंकार महेश्वर ॥
हास अनन्द सोई है माया । ज्ञान दुःख दंभ दूर कराया ॥
प्रानसो पौन पिष्ठ अपकर्मा । पीठ अस्थि हिमगिरि कह मर्मा ॥
पसुली इतर अस्थि गिर नामा । जो हिमगिरके दक्षिण बामा ॥
दहनाहाथ सो दान अस वर्षा । बाम सूम तासुष्को तर्षा ॥

हाथ चीन्ह अप्सरा सुभाती । कर नख सो सुरगण बहु जाती॥
दक्षिण करबंध अरु निजताई । लोकपाल देव अग्नि बनाई ॥
बाम जोड़कर जो अरु निजलो । अहं देव ईसान नामलो ॥
औरनिज सो कल्पद्रुम कहिये । आगे और भेद कछु कहिये ॥
दक्षिन कंध सो दांहना छोरा । वामकंध सो बायो ओरा ॥
गरदन मोढा वरुणदेववर । कंठसो महर्लोकके स्वर्ग ऊपर ॥
शब्दसो अनहद बुद्धि जो नीकी । महर्लोकके ऊपर ठीकी ॥
सो यम लोक बखानों ताहा । चिंतादुःखसे जगकी चाहा ॥
होटको ओष्ठ लोभको साजू । ऊपरको ओष्ठ हया अरु लाजू ॥
तालू पानी जिह्वा आगी । वचन सोई सरस्वती सुभागी ॥
दंतमोह जग पुनि कह भोजन । सब जग जीव करे जो भक्षण ॥
इतबानी उत चारों वेदा । हास्य सो माया रचना भेदा ॥
कानदो जक्त आठ विधि धारा । नाकपरा सो अश्विनी कुमारा ॥
देहगंध सो पृथ्वी योका । अधोतन दक्षिनपंचमयमलोका॥
अर्धदेह उत्तर जो हेरी । सो तपलोक षष्ठमो टेरी ॥
मस्तक बल सो नूर असलकह । आदि कि उत्पतिको सूरय वह॥
दृष्टि सदा जग उत्पति सारा । पलक मारन दिनरात उचारा ॥
दक्षिन दिशाकी भृकुटी जोई । प्रीति देवता महतर सोई ॥
बाम और भृकुटी जो लस्ता । कहर क्रोध सुर कहे देवस्ता ॥
मस्तक सो तपलोक बखानो । सो जनलोकके ऊपर जानो ॥
शीस खोपड़ी लोकालोकू । सब लोकनते उपर विलोकू ॥
शिर कच महाप्रलय घनकारे । तनरोम नोक वनस्पति भारे ॥
रूप अनूप लक्ष्मी जाना । देहक्रांति रवि प्रभा प्रमाना ॥
महापुरुषको सोहैं गेहा । जगमें जेती मानुष देहा ॥
आतम चिदानंद करि मानी । स्वास महल पूर यतन ज्ञानी ॥
श्वास जबही नीचेको जाई । सारी सृष्टि तबै प्रकटाई ॥

जिहि औसर बिच श्वासा रोका। हरा होय तब सब जग लोका ॥
जबहि श्वास ऊपरको खींचा। महाप्रलयहो सबकी मीचा ॥

दोहा-पिंड और ब्रह्मांडमें, रंच भेद नहिं बाद।
नानक सत्यकबीरको, अब सुनिये संवाद ॥

नानक वचन

तीन लोककी कहो गुसांई। कैसे आनि परे तन माही ॥
कहीये दयासिंधु मोहि बानी। तुम निज पुरुष पुरातन ज्ञानी ॥

जिंदा वचन

हेठ चरण दै शीश अकाशा। तीनलोक देही प्रकाशा ॥
शब्द खंड ब्रह्मांडमें सोई। माया ब्रह्म फैल घट दोई ॥
हमरे पदको लहै न कोई। भले बूझ तुम पारख होई ॥

नानक वचन

चार दिशा मोहि कहो गोसाँई। सातद्वीप निज कहो बुझाई ॥
प्रभु नौखंड अब कहो बखानी। चंद्रशूर तन कैसी मानी ॥

जिंदा वचन

आगा पीछा दक्षिन बाना। चार दिशा देही प्रमाना ॥
साढे तीन हाथकी देही। उनचास कोटि बिसियाहै पेही॥
नवो खंड नौ संधी जानो। पिंड अंडको लेखा मानो ॥
परवत यामें हाड लगाया। धड पासू ब्रह्मांड रचाया ॥
चंद्र शूर द्वै नेत्र जगावा। देखो पीठ सुमेर बनावा ॥
नसन दिया तन भीतर जानो। पेट गंडार पिंडमें मानो ॥

नानक वचन

तत्त्व प्रकार कही तुम वानी। वाकी शब्द संधि पहिचानी ॥
सातसमुद्र कहो बखानी। तुमही पुरुष पुरातन ज्ञानी ॥

जिंदा वचन

जीभ नासिका नेत्र बखानो। श्रवण नाभ गुद इंद्री मानो ॥

खार मीठ जल सब पहिचानो । नौसौ नदी पिंडमें मानो ॥
श्वासा नदी नासिका वासा । जिह्वा स्वाद करे रस भाखा ॥
ये समुद्रमें जाय समानो । है गंडार नहीं त्रिप्तानो ॥

नानक वचन

सात समुद्रकी लहर बखानो । इनकी लहर कौन विधि मानो ॥

जिंदा वचन

काम अरु क्रोध लोभ हंकारा । मनमायाकी लहर अपारा ॥
अग्नि पौन पानी प्रचण्डा । पांच तत्त्व वर्तें नौ खण्डा ॥

नानक वचन

बाही लहर हीरा अरु मोती । यामें कहा निकसि है सोती ॥
सभी भेद मोहिं कहु गुरुदेवा । नहिं छोड़ो अब तुमरी सेवा ॥

जिंदा वचन

जब गुरु मिलै भृङ्ग सम रंगा । ब्रह्मज्ञान उपजै सतसंगा ॥
सुमिरन भजन होय परकाशा । अनहद ध्यान पुरुषकी आशा॥
अर्श गैबमें ध्यान लगावै । तवासिंधु थाह कोइ पावै ॥
जाय हंस तहँ डुबकी मारा । ले निकसे तब वस्तु अपारा ॥
हीरा लाल नाम परकाशा । शब्द सुरति हंसाको बासा ॥
कथा समाज निकसिहै ज्ञाना । सो हीरा मणि माणिक जाना ॥

नानक वचन

खार मीठ जल इहां अपारा । उहां कहां गुरुकर निर्धारा ॥

जिंदा वचन

नयन नाक इन्द्री जल खारी । गुदा श्रवण जानौ जलधारी ॥
खार मीठ जल सभी भरा है । जो ब्रह्मांड सो पिंड कहा है ॥

नानक वचन

इहां है काठ लोहकी नौका । कहो स्वामी व्यौहार वहांका ॥

जिंदा वचन

नाम पुरुष नौका इहां भाई । खेवट संत गुरु संत मिलाई ॥
पुरुष शब्द सुमिरो लौ लाई । पुरुष प्रताप उतरि चल भाई ॥

नानक वचन

धन्य कबीर परम गुरु ज्ञानी । अमरभेद भाषी निज बानी ॥
साखी-तिलघोटत तारी लगी, दिलदरियाके तीर ।
नानककी संशय मिटी, जो सतगुरु मिले कबीर ॥

चौपाई

बहुरि अर्ब यूनानके ज्ञानी । पिंड अण्ड सम तूल बखानी ॥
जो सबही ब्रह्मांडमें देखो । पिंड केर सोई है लेखो ॥
अस्थि पहाड़ है मेघ पसीना । शिर नभ इंद्री कर्म प्रवीना ॥
सुर नर मुनि ग्रंध्रव अरु देवा । पिंड अण्डमें एकै भेवा ॥
सकल भांतिके पशु खग नाना । कर्म करंत बसै परधाना ॥
भोजन पावक पौरुष जोई । सोई रसोईदार कहोई ॥
जो बल अंतमें भोजन धरई । गन्धी नामक तासुको परई ॥
जो बल रुधिरको श्वेत बनावै । नारि कुचनमें दूध कहावै ॥
अण्डकोष नर बीरज धोवै । धोबी नाम तासुको होवै ॥
भोजन अंगमें बाटनहारा । नाम बंधानी तासु उचारा ॥
जल जो पसीना रूप निकारी । सो कहिये सक्का पनिहारी ॥
जो भोजन मल बाहर डारे । नाम हलाहलखोर सो धारे ॥
बात पित्त जो अन्तर गहई । सोई न्याय करंता कहई ॥
यह विधि सब पशुखगतनमाही । क्रोध स्वरूपी बीग सो आही ॥
अंड पिंडकी अकथ कहानी । मैं कछु सूक्षम लिखा प्रमानी ॥
दोहा-बूँद समाना सिंधुमें, यह जाने सब कोय ।
सिंधु समाना बूँदमें, जाने बिरला सोय ॥

कुंडलिया

जातै बिरला सोय होय जब सतगुरु दाया ।
मैंहि मैं सब ठौर और सबही भ्रम छाया ॥
भ्रम छाया सब ओर दौर मन ज्ञान कि टट्टी ।
टट्टी जब टुटि जाय आय नहिं पुनि या हट्टी ॥

इति ब्रह्मांड पिंड

अथ सर्वदेशभाषाकी एकता

दोहा—जेते मानुष जक्तमें, हिंदू सबकी आदि ।
भाषा सारे जक्तकी, संस्कृत पितु है बादि ॥

चौपाई

संस्कृत कह सोधित जनको । सोई पिता सर्व भाषनको ॥
संस्कृतके जो गुण औगाहा । ताकी नहिं कोई पावै थाहा ॥
वेदकि संस्कृत जो आहीं । अबके पंडित समुझत नाहीं ॥
एक सूत्रके अर्थ अपारा । कह सब निजु निजु मति अनुसारा ।
मर्म न जानै अर्थको सोई । यथा बुद्धि भाषै बुध लोई ॥
गूढ अर्थ जानै ब्रह्म-ज्ञानी । गुप्त वस्तु जेहि कछु न दुरानी ॥
संस्कृतको वर्ण बिचारो । और न कहुँ अस युक्ति निहारो ॥
प्रथम संस्कृतको वर्ण माला । और न कोई भाषामें भाला ॥
आदिके अक्षर बारह स्वरको । ब्रह्मस्वरूप जानिये तिनको ॥
अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ कह । औ अं अः रामरमित सब यह ॥
बारह ब्रह्म बसै ब्रह्मंडा । कथै कौन सब गुणमय मंडा ॥
एक अकारते बारह स्वर हैं । व्यंजन सकलको परम पितर हैं ॥
सबके आदि है एक अकारा । ताते वृद्ध भये पुनि बारा ॥
बारहरूप अकार सो बनेऊ । न्यारे न्यारे कारज ठनेऊ ॥
एक थूल यक सूक्षम रूपा । थूल प्रकट सूक्षम रह गूपा ॥
थूल अकार जो सूक्षम भैऊ । सो सब बरणनमें रमि गैऊ ॥
वासुदेव सब माहि बिहारी । कोई साधुजन सकै निहारी ॥

निर्गुणते सरगुण जब भैऊ । ताहीको ककार जग कहेऊ ॥
जब अकार निजु रूप गहाया । है ककार दशमें दरसाया ॥
पुत्र पौत्र सही तथा न कर । क ख ग घ ङ दशमें दर ॥
पञ्च ब्रह्म रह दशमें द्वारा । तिनके पुत्र अग्र पग धारा ॥
तालूपर सो कीन बसेरा । च छ ज झ ञ सोई टेरा ॥
तिनते पुनि ट ठ ड ढ ण भैऊ । तालू अग्रबास तिन लैऊ ॥
त थ द ध न फिर आगे आये । दंतमूल सो बैठक पाये ॥
प फ ब भ म अधरनपै बैठारी । मुख कपाट सो दीन उघारी ॥
य र ल व श ष स ह क्ष त्र ज्ञ अगाहा । बाहरको कर चले उछाहा ॥
खोलि कपाट सो बाहर बिचरे । ब्रह्मवेत्ता बुध बानी उचरे ॥
संस्कृतके हैं अक्षर जोई । सबके पिता जानिये सोई ॥
बारह ब्रह्म सकल व्यंजनमें । धरि लघुरूप रमे सब तनमें ॥
जड़ चेतन सब माह बिहारी । जो चीन्है सो ब्रह्माचारी ॥
वासुदेव है आदि अकारा । सो रमिरहा सकल संसारा ॥
आदि ब्रह्म अकार कहाये । जहँ तहँ सोइ रहा जग छाये ॥
लखो न जाये अलख अविनाशी । सर्व खानिमें स्वतह प्रकाशी ॥
सोई अकार जो भयौ बिकारी । रचनासरिसो जक्त पसारी ॥

दोहा-जब अकार ब्रह्मांडसे, मृत मंडलमें आये ।
दशमें दर परथान कर, सोई ककार कहलाये ॥
सो ककार काया रचे, जनक जगत करतार ।
तारण कारण जीवके, गुरु है सो तनधार ॥

चौपाई

अब दुतिये बिधि कहो बखानी । आदि संस्कृत जावे जानी ॥
सर्व वेदकी भाषा जोई । एक मिलान बखानो सोई ॥
सब यूनानके देवी देवा । हिंदूको पूजा अरु सेवा ॥
हिन्दू जाको श्रीकह गाये । सीरिज यूनानी बतलाये ॥

इत जो देव गणेश बखानी । सो गम्मस रूमी यूनानी ॥
इंद्रको हिन्दू कह देव पितर । उत जु पितर कह लाववज्रधर ॥
हिन्दू अनपूर्णा कह भाषी । अनपूर्णा यूनानी साषी ॥
संस्कृतमें जो पित्र कहावै । सोई पारसी पितर बतावै ॥
अंग्रेजीमें फादर सोई । मातर मादर कहिये जोई ॥
भ्राता प्रादर नाम कहीजै । कृतकार कृतगार भनीजै ॥
अंग्रेजी कृयटार कहावै । हिन्दू सो करताहि बतावै ॥
मिह्र संस्कृत सूरज भाषा । अरबी मिह्र नाम सोइ राखा ॥
अभ्र संस्कृत बादल बोले । अब्र पारसीमें सोइ खोले ॥
पुत्र संस्कृत सुअन कहावै । अंग्रेजीमें सन बतलावै ॥
पृष्ठ पारसी पुस्त प्रमाना । नैन सो अर्बीऐन बखाना ॥
सृष्टि संस्कृत कीन बखाना । सो पारसी सरिस्त प्रमाना ॥
दुहिता संस्कृत बेटी होई । सो पारसी दुखतर कह सोई ॥
सो डाटर अंगरेजी माहीं । अस्व अस्य लो हार्स कहाहीं ॥
शब्द अनेक बकी यक ताई । बुधवन्तो सो लेहु मिलाई ॥
भाषा बहुत पढ़े जो कोई । बोलके मेल मिलावै सोई ॥
अब तृतिये दृष्टांत निरेखे । संस्कृत व्याकरण परेखे ॥
जो व्याकरण संस्कृत माहीं । ऐसो शुद्ध और कहुँ नाहीं ॥
संस्कृतसे है अरबी बानी । मिश्री यूनानी अलेनानी ॥
संस्कृतसे सब गुण महि सारी । उक्ति युक्ति कछु भिन्नसवारी ॥
अब चौथे यह भाषो भेदा । सर्व शास्त्रके प्रथमहि वेदा ॥
चारो महा बाल है जोई । संस्कृतमें पुनि उजरी सोई ॥
पुनि पञ्चम अस कहो बखानी । ताते आदि संस्कृत जानी ॥
मुख्य नाम परमेश्वर केरा । संस्कृत की बोलीमें हेरा ॥
और बोलमें आवत नाहीं । संस्कृतमें शुद्ध गहाहीं ॥
अब छठये यहि विधिते सुनिये । ताते आदि संस्कृत गुणिये ॥

सत्य कबीरके नाम जो चारो। चहुँयुगमें भिन्न भिन्न उचारो॥
सत्य सुकृत मुनींद्र कहाये। करुनामय स्वामी बतलाये॥
कलियुग माह कबीर उचारो। चारों युगके नाम हैं चारो॥
नाम संस्कृतमें युग तीनी। कलियुग मिश्रीत करि दीनी॥
अरबी संस्कृत मिश्रीत कबीरा। हिन्दू मुसलमान गुरु पीरा॥
जेते और कबीरके नाऊ। सबही संस्कृत माह कहाऊ॥
सतये स्वसंवेद कह येही। अज हरि हर मथुरा धर देही॥
तीनों देव पिता सब नरके। तीन लोक ब्रह्मा हरि हरके॥
ब्रह्म श्वासते वेद उपानी। उचरे तीन देव मुख बानी॥
संस्कृत सुर बानी होई। ताते श्रेष्ठ और नहिं कोई॥

इति देश

अथ ब्रह्मा और आदमकी एकता–चौपाई

ब्रह्मा आदम एकै अहई। सत्यकबीर बचन अस कहई॥
ब्रह्मा सावित्री नर नारी। आदम हौवा ताहि पुकारी॥
ब्रह्माको काशीमें वासा। अदनवाग सो नाम प्रकाशा॥
काशी सम कोइ पुरी न आना। देखो काशी खंड प्रमाना॥
बन अनद पथमें कहलाया। वाराणसी बहुरि बतलाया॥
नाम तासु कहिये पुनि वासी। सब अनंद सब सुखकी रासी॥
वाराणसी सो भयौ बनारस। सुखसे सावित्री ब्रह्मावस॥
आदिमें कहे जो वन आनंदा। अरबी अदनबाग सुखकंदा॥
वन है बाग अरबकी भाषा। नाम अनंद अदवसों राखा॥
उलटि आनंद अदन हो सोई। कहे अरब पारसके लोई॥
संस्कृतकी बोली बहुतेरी। अरब लोग उलटा कहि टेरी॥
वन अनंद बाग अदन जो भैऊ। वाराणसी बनारस कहेऊ॥
अरब न संस्कृत सके उचारी। उलटा सुलटा सो करि डारी॥

इति आदमब्रह्मा

अथ मनुशतव्रता और नूहकी एकता-चौपाई

मनुशतव्रता नूहको जानी । पलय पयोध जो राख्यौ प्राणी ॥
नाव बहेतरा मनु नृपाला । रच्यौ बचावनजिव तेहिकाला ॥
ताही बहेत्रा सकल चढ़ाई । तेहि औसर जल परलय आई ॥
तब हरि लियौ मीन औतारा । दोय सींग निजु शीशमें धारा ॥
मीन रूप जो विष्णु बनाई । ताहि बहेत्रा शृंग लगाई ॥
भलिबिधि बांधे बहेत्रा ताही । निजु बलते गहि राख्यौ वाही ॥
नाव बाँधि हरि आज्ञा देऊ । मनूजाये तह आसन गहेऊ ॥
लीने सप्तऋषी निजु संगा । आठ जीव बैठे यहि ढंगा ॥
चहुँ दिश तबहि जलामय होई । भे संहार बचा नहिं कोई ॥
तरे बहेत्रा जलके माही । आठो जीव तहां बचि जाही ॥
प्रलैय कीन फिर सृष्टि बसाये । धर्म महम्मद अस बतलाये ॥
प्रलय पिछारी नूह पुकारा । प्रथमै नाम और कछु धारा ॥
आदिको नाम नूह ना होई । बदलि गयौ पीछे ते सोई ॥

इति मनुशतव्रत।

अथ महादेव और महम्मदकी एकता-चौपाई

श्रीमुख सत्यकबीर बखानी । महम्मद महादेव सो जानी ॥
महादेव क्षत्री रन वाके । सोइ महम्मदकी है साके ॥
धर्म जासुको शस्त्र प्रहारा । सोई करे सृष्टि संहारा ॥
तमगुण आदिमें वेद बखाना । रूह महम्मद प्रथम उपाना ॥
तमगुण आदि सृष्टिको करता । भवसागर ताते थिर धरता ॥
भव है नाम महादेव केरा । ताते यह भवसागर टेरा ॥
भव भवानी द्वै रूप बनाया । भवसागर सरदारी पाया ॥
शिवके संग नारि द्वै जानी । शीश गंग कटि गौरि भवानी॥
महम्मदपें मकार द्वै देखो । दोहू नारि तेहि संग बिशेषो ॥
दोउ मकार महम्मद नामा । गंग गौरि बरणो वर बामा ॥

आप भिखारी अनधन देही । महम्मद महादेव है येही ॥
धन अरु दर्ब चाकरन पाही । आप अलोनो साग जो खाही ॥
महा उदार महम्मद दाता । जक्तमाह सो शिव विख्याता ॥
योग भोग दोनों गुण भीजा । साबर मन्त्रो दोवा तबीजा ॥
योग युक्ति शिववर्त बताया । उत नमाजा रोज ठहराया ॥
ये ॐकार शब्द गोहरावै । वे भोरे उठि बाग उठावै ॥
खड़ी एक नस महम्मद माथे । दंडाकार तिलक तेहि साथे ॥
प्रकट दोऊ भृकुटीके बीचे । मस्तक अंत प्रजंतलों खींचे ॥
जस कबीरमुनि तिलक कराही । सोई महम्मद मस्तक माही ॥
क्रोधवंत जब महम्मद बोले । तेहि औसर सोई नस डोले ॥
रोमधार यक उर बिच धारी । सोऊ दंडाकार सँवारी ॥
नाभिते कंठप्रजंतलो सोही । जन कबीर मुनि रूप है ओही ॥
शिवके संग रहे बहु देवी । तिमि बहु तारि महम्मद सेवी ॥
चीन्ह चक्र सब ताके साथा । आदिभक्ति सोई पशुनाथा ॥

इति श्रीमहादेव और महम्मदकी एकता

अथ हनुमान और अलीकी एकता

छन्द–झुलना

हंक हनुमानते लंकमें शंकभ अलीके हंक गढ बंक टूटे । अली हनुमान दोऊ बांहके बली अरि अनी दलमली ज्यौ सनी कूटे ॥ १ ॥ शूद्र जेहि शत्रुगण बीर्य सासुद्रधन रूद्र शिव देखि दल दैत फूटे ॥ शूर संग्राममें गुणनके धाम दोऊ अली हनुमान गुणमाहँ जूटे ॥ २ ॥

इति हनुमान

अथ परशुराम और मूसाकी एकता–चौपाई

परशुराम मूसा यकताई । ऐसे दोहुको मेल मिलाई ॥

विप्र अवज्ञा कीनो हरिकी । क्रोधवन्त कमला तबसरकी ॥
विष्णुकि छाती चरण प्रहारा । सब दुःख द्वन्द्व घेर तिहि बारा ॥
रहे बेहाल काल बहु तेरे । तब प्रभु तिनहिं दयादृग हेरे ॥
परशुराम लीनों औतारा । ब्राह्मण कुलको पालनहारा ॥
विद्या बुद्धि तपोधन धारी । रूप शील बल बीरज भारी ॥
सो द्विजराज काज चित दीने । क्षत्री मारि निछत्तर कीने ॥
तथा यहूदिन विकल विचारा । तब मूसा लीनो औतारा ॥
सो फिर उनको मारि नसाया । इबरानिनको प्राण बचाया ॥
विद्या बुद्धि निपुण गुणखानी । बल वीरज शोभा सरसानी ॥
परशुराम कर फरसा जोटा । तैसे मूसाके कर सोटा ॥
जैसे ब्राह्मण तथा यहूदी । दोनों माह देखिये खूदी ॥
कुल अभिगान दोहुनमें भारी । अबिरहाम वंश तन धारी ॥
परशुराम मूसा यक सारा । दोनों विष्णु केर औतारा ॥

इति परशुराम और मूसा

अथ कृष्ण और क्रैष्टकी एकता—चौपाई

कृष्ण क्रैष्ट दोउ एक समाना । हरि औतार धरे नर बाना ॥
क्रैष्ट नाम ईसाको आही । अंग्रेजी बोलीके माही ॥
हिंदू कहे कृष्ण जगदीसा । ईसा इनके ईस हैं ईशा ॥
कृष्ण आगमन जबहि जनायौ । सो सुनि कंसराय भय पायौ ॥
इसा जन्म भव्य सुनि काना । तबहि रोद भूपति भय माना ॥
कृष्ण जो जन्म भयौ जेहि बारा । चहुँदिस फैल गयौ उजियारा ॥
कंसकी डर वसुदेव डेराये । मथुरासे गोकुलमें ल्याये ॥
यथा कृष्ण मथुराको त्यागे । तैसे ईसाको ले भागे ॥
गर्भसे जब ईसा प्रकटाने । चहुँदिश तबहि तेज चमकाने ॥
यूसुफ नृप हिरोद भय पाई । ले मसीहको मिश्र सिधाई ॥
कृष्ण जन्म सुनि कंस डेरायो । केते बालक मारि नशायो ॥

ईसा भय हिरोद भूपाला। हने बहुत बालक तेहि काला ॥
रोग अनेकन कृष्ण घटाये। जीव केर दुःखद्वन्द हटाये ॥
मृतकहूको फेरि जिलाये। गुण अनेक कहलों बतलाये ॥
सा सबही गुण ईसा माहीं। देखि द्वैतदल दूर पराहीं ॥
इन असुरनको मारि नशाया। उन भूतन अरु प्रेत भजाया ॥
कुबरी कूबर कृष्ण सुधारा। तिमि ईसा कुबरी सुखसारा ॥
साठि हजार शिष्य संग लयऊ। दुर्वासा ऋषि आवत भयऊ ॥
चावल एक कृष्ण भंडारा। सबको तृप्त कीन तेहि बारा ॥
रोटी पांच मीन द्वै रहई। सो मसीह निज करमें गहई ॥
पांच हजार भीर नरदीसा। सबको पेट भऱ्यो तेहि ईसा ॥
ज्वाला कठिन कृष्णकर घाटा। ईसा अंधकारको डाटा ॥
अर्जुन पर हरि कीनी दाया। तिहि निजरूप विराट देखाया ॥
तिमि ईसा शोभा सरसाई। निजशिष्यन निजरूप दिखाई ॥
कृष्णमें केते गुण सरसाई। तिमि कोइ गुण ईसा अधिकाई॥
कृष्ण क्रिष्ट दूनो यक रूपा। उभय भये भवसागर भूपा ॥
कृष्णमृत्यु जिमिप्रथम बताया। भील तीरते प्राण नसाया ॥
जगमें जगन्नाथ जग मगही। कृष्ण अस्थि हरिमेला लगही ॥
ईसा को तिमि क्रूस चढाये। जिये बहुरि निज पंथ चलाये ॥
इन गीता उत कथा इञ्जीला। दोनों विष्णु स्वरूप सुशीला ॥

इति श्रीकृष्ण और क्रैष्टकी एकता

अथ राजा और पण्डितकी एकता चौपाई

राजा पंडित एक समाना। जगमें श्रेष्ठ दोहूका जाना ॥
राज पाये इनके मद भारी। विद्या मद उनके अधिकारी ॥
ये बस करे सेन ले लोहा। अमृत वचन ते मेमन मोहा ॥
ये धन हरवे मनको हरते। हुकुम दोहूको जगमें बरते ॥
इन धन अरु दर्प घनेरा। उनके विद्या धन बहुतेरा ॥

दिग विजयी दोनों तन धारी । विषयानंद अहै संसारी ॥
इनकी तृषा न धनते हटई । वह दिन दिन विद्यामें डटई ॥
धन विद्या बन माह भुलाने । ताते नहिं सतपदको जाने ॥
दोना जो विषयनको तजई । ह्वै निरद्वंद जो हरि पद भजई ॥
जक्तमें उत्तम देखो जैसे । भक्तमें श्रेष्ठ होहि सो तैसे ॥
विद्या भक्तिको अंग विचारी । तासु दृष्टि पांडितको भारी ॥
ताते बुध नृपते बड़ अहई । वेद प्रमान शास्त्र अस कहई ॥
विद्याधन सब धनन बड़ेरा । अंग सङ्ग ताको नित हेरा ॥
राजकर्म पंडित आधीना । बिन पंडित हो महीप मलीना ॥

इति एकता

अथ भवसागर वर्णन

दोहा-भवसागर वर्षा न करो, सुनो सयाने सन्त ।
जामें गोता खात जिव, लहै न कोई अन्त ॥

सोरठा-भाँति भाँतिके जीव, चौरासी लख योनि जग ।
विलग विलग कर पीव, खानि-खानि बिलगायके ॥

चौपाई

यह भव उदधि अपार बखाना । गोता खाहि जीव विधि नाना ॥
चौरासी लख योनि भ्रमावै । बूड़े उछले पार न पावै ॥
जेते जीव भवनिधि तन धारी । मानुष देह मुक्ति अधिकारी ॥
सो मानुष तन दुर्लभ कैसे । जैन धर्म वर्णन कर ऐसे ॥
यह दृष्टांत सुनाये सोई । अस चौड़ा सागर जो होई ॥
कोटिन योजनकी चौड़ाई । भवनिधि थूल कहा कहिजाई ॥
बैल केर जूवा गहि लीजै । जूवा डंडा अलग करीजै ॥
तेहि समुद्रके एक किनारे । जूवाको डंडा गहि डारे ॥
जूवा डारे दूजे छोरा । मारे वायूको झकझोरा ॥
बहुत फिरे डंडा अरु जूवा । बहै सदा इत उत सो हूवा ॥

जो संयोग कबहु गह सोई। जूवा दंड यकठें होई॥
आपै आप मिले जो आई। पैठे ताहि छिद्रमें जाई॥
बिन सहाय जूवामें पैठे। पहिली ठौर ठेकाने बैठे॥
ऐसी दुर्लभ मानुष देही। चौरासी भ्रम पावै येही॥
धर्म महम्मद बहुरि बतावै। एक बार मानुष तन पावै॥
मूसा ईसा मतमें सोई। फेर नहीं मानुष तन होई॥
वेद करे पुनि ऐसे वर्णन। पुनि पुनि जीव लहै मानुष तन॥
आठ लक्ष योनी भ्रमि आवै। पुनि गह जीव मनुष तन पावै॥
सत्यकबीर जो बचन उचारा। अति दुर्लभ मानुष औतारा॥
नरतनु पाये न भक्ति विचारा। सो पापी आतम हत्यारा॥
सुरदुर्लभ यह मानुष देही। सो तन लहै भजु परम सनेही॥
चार खानिके जीव अपारा। जो थावर जंगम तन धारा॥
कोइ दीर्घ कोइ सूक्षम देखो। भारी थूल हरू लघु लेखो॥
नाना वर्ण और गुणधारी। पूरि रहे भवसागर झारी॥
युगन प्रजंत काहु थित गाई। अतिसै लघु आयू कोइ पाई॥
स्वर्ग नर्क चौरासी लाखा। सो सब अंड पिंडकी साखा॥
भवसागर त्रिदेव भे राजा। सब जिव तिनके देठ विराजा॥
सोई सुर सुरपति शिरताजा। तिनके हाथ है काज अकाजा॥
भवसागरमें द्वै तट जानो। एक लोक यक वेद बखानो॥
वेद कूलपर मन आसीना। लोकछोर माया गहि लीना॥
मध्यमें तीन देव गुणधारी। महा अपर्बल पाँच शिकारी॥
भ्रमसागर कहिये भवसागर। दश दिश काल मचायौ झागर॥
भव पुनि भगको नाम कहावै। तामें सब जिव आवै जावै॥
भव शिव नाम भवानी पतिको। जीव लखै को ताकी गतिको॥
तीनों लोक बसै भग माही। बिन गुरु कृपा न बाहर जाही॥
कोटिन योग युक्ति जो करिये। भग मारग पुनि पुनि पग धरिये॥

चौरासी लख मीन बनाये । मन मछुवा सब तिनहि फसाये॥

सत्यकबीर वचन—शब्द

तन झौपडी मन बसै महरवा ।

नान्हेनान्हे डोभवन बीनै महजरवाडारि दिये नियक भरमसगरवा ।
गहिरेमें महरा पैठि न सकै विन बूड़े नहिं मिलत सिकरवा ॥
यक ओर महरा यक ओर महरी मारि लिहे नियक मोहमछरवा ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो ताकि लिहे नियक अमर सहरवा ॥

चौपाई

तीन देवमें विष्णु बड़ेरे । तिनको हुकुम फिरे चहुं फेरे ॥
तीन लोक भवसागर माही । तीन देव तहँ राज कराही ॥
तीन लोकको सूत्र बखानो । जामें सकल जीव भरमानो ॥
प्रथमहि विष्णु सर्व शिरमौरा । तासु हेठ सुरगण सब औरा ॥
दुतिये पौरी विद्याधर है । नहीं देवता नहिं सो नर है ॥
सुर नर माह जान यह सीढी । भाषो बहुरि तीसरी पीढी ॥
नर वानर यक लेखे कहिये । यक ब्यौहार दोहमें लहिये ॥
दोनों बीच भेद अति थोरा । पशु अरु मानुषमें यह डोरा ॥
बिन दुम नर कपि पूछ समेता । नर वानर यक गुण कह केता ॥
औरँग औटँग वानर जोई । नर आकार सर्व सो होई ॥
अंगरेजीके ग्रंथन माहीं । विना पूछ वानर यह आहीं ॥
दोनों पगते नर ज्यौं चाले । दोनों हाथ काममें डाले ॥
वानर इतर जाति बहु तेरे । भिन्नभेद क्रम क्रमसे हेरे ॥
अंगरेजी अखबार बखाने । द्वै मानुष दुमदार लखाने ॥
हबशदेशको जंगल जहँवा । द्वै मानुष दुम युत रह तहँवा ॥
डेढ़ हाथकी पूछ सो गहई । मादमें पशु समान सो रहई ॥
एक जाति मानुषको आही । रहे हिमालय पर्वत माही ॥
ऐसो निकट छोड़ तनधारी । पंछिन संग मचावै रारी ॥

चील्ह गीध गहि गगन उड़ाही । तेहि मानुषको धरि धरि खाही॥
तब सो नर गण जोरि सहाई । पंछिके संग करे लड़ाई ॥
ऐसे बिबिधि भांति नरजाती । तिनकी कथा न कथे सिराती ॥
नानारूप बरण गुणधारी । जहँ तहँ पृथ्वी माह विहारी ॥
चार लक्ष मानुषकी जाती । तिनकी कथा कथे बहु भांती ॥
जलमानुष थलमानुष देखो । वनमानुष आदिक बहु लेखो ॥
पशुमानुष कहु मिश्रित होई । अकथकथा कहि जात न कोई॥
बहुरि कहो मानुष पशु ख्याला । सब परिवार जो करे उगाला ॥
भोजन पीछे पागुर करही । बिन उगाल तिनको दुःखधरही ॥
पशु नर नरपशु एक सो हेरी । देखहु कुदरत करता केरी ॥
छायारूपी नर कहु सरसै । चेष्टा दीख रूप नहिं दरसै ॥
रचना विविधि भांति कहि गाई । ताको लेख लिखो नहिं जाई ॥
चौथो सूत्र बहुरि कहि गावो । जलचर मानुष मेल मिलावो ॥
रह समुद्रमें गर्गन मच्छी । अर्ध है मीन अर्ध तिय अच्छी॥
कटिके ऊपर सुन्दर नारी । अर्धहेट मच्छी तनधारी ॥
कबहूके सागर तीर सुखारी । कबहूके जलमें गोता मारी ॥
शृंगी ऋषि शिर सींग बताई । मुखमें सुण्ड गणेश गोसाई ॥
पंचम पौरी करो बखाना । पशुपंछीको मेल मिलाना ॥
चाम सुन्दरी वाको कहई । दोनों रंग ढंग गुण गहई ॥
सो नहिं खग अंडजकी जाती । चाम गूदरी है बहु भाँती ॥
नहिं पशु नहिं खग मध्यम थापू । मुरगी एकसै परसे टापू ॥
वृद्ध नारि सो सुख है जाको । जब कोइ दुःख देतहै वाको ॥
रुदन विलाप करे जस नारी । केते पशु खग नरगुण धारी ॥
दादुर एक अमेरिका देशा । रुदन करे जब लहे कलेशा ॥
छठी पौरी बरणो सोई । जो चेतन रूप जड़ होई ॥

लजवंयक पौधा चेतन। पशु पंछी सम चेत तासु तन ॥
जड़ चेतन गुण दोहू गहावै। पशु पौधाको मेल मिलावै ॥
सतई पौरीको अर्थावो। जो चेतन जड़ सम सिथलावो॥
पलपी तारा दोनों मछरी। सो सम चेतनते अति पछरी ॥
जड़ समान यक ठौर गहाई। हले न चले गहे थिरताई ॥
पलपी देह दाग बहुताई। जो कोइ ताको काटै जाई ॥
जैसे माली कलम लगावै। फूल बेलको काटि बनावै ॥
जेतनो टूक करें कोइ ताको। होहि पालपी सबही वाको ॥
जेतनी दाग रहे तब माही। सो सबही पलपी ह्वै जाही ॥
जड़ चेतन दोऊ ता ढंगा। जड़समान चेतनको अंगा ॥
अष्टम पौरी कहो बखानी। जड़मय योनि गोदजिव जानी॥
नर नारकी लोक जिव पौरी। जड़सम सदा रहै एक ठौरी ॥
नर्कहेत नारकसो नाही। जैन मते दुख देखो नाही ॥
तीन लोकको सत जो भाषा। काया तरूकी यह सब साषा ॥
जैसो कर्म जीव जो कर्ता। तैसो तनधरि जगमें वर्ता ॥
सब जिव पुण्य पापकी आसा। पुनि पुनि कर योगिनमें वासा ॥

इति जीवधर्मबोध समाप्त